प्रकाशक—
गिरिजाशङ्कर वर्मा
अभिनव भारती ग्रन्थमाला
१७१-ए, हरिसन रोड,
कलकत्ता

प्रथम वार
जनवरी. १९४१
मूल्य १॥)

मुद्रक—
जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

सम्पादकीय वक्तव्य

भारतवर्षके प्राचीन ज्योतिषियोंने ब्रह्माण्डका विस्तार बतानेका प्रयत्न किया है। ब्रह्मगुप्त, श्रीपति, भास्कराचार्य, चतुर्वेदाचार्य प्रभृति ज्योतिषियों ने बताया है कि आकाशकी कक्षा १८७१२०६९२०००००००० योजनों की है। परन्तु प्राचीन भारतमें यह एक विवादास्पद ही विषय रहा है कि यह लंबी संख्या जिसे आकाश-कक्षा (या संक्षेपमें ख-कक्षा) कहते हैं वस्तुतः क्या चीज़ है। यह क्या वही वस्तु है जिसमें रातको फैले हुए असंख्य नक्षत्र और ग्रह विचरण करते दिखाई देते हैं, या कुछ और। विद्वानोंका मत था कि यह ब्रह्माण्डकी परिधि है। भास्कराचार्यने अपनी कविजनोचित भाषामें इनके मतको "ब्रह्माण्ड-कटाह-सम्पुट-तट" का मान बताया है। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार ब्रह्माण्ड दीर्घवर्तुलाकार स्थित है। 'ब्रह्माण्ड' शब्दमें ही इसके अण्डाकार होनेकी ओर इशारा किया गया है। यह मानो दो विराट् कड़ाहों को उलट कर जोड़ दिया गया है, जिसकी परिधिका सर्वाधिक विस्तार उस स्थानपर है जहां दोनों कड़ाह मिलते हैं। इसीलिये ब्रह्माण्डकी परिधि यह 'कटाह-सम्पुट-तट' ही हुआ। इस प्रकार इस श्रेणीके विद्वान् ऊपरकी लंबी संख्याको ब्रह्माण्डकी परिधि ही मानते थे। परन्तु पौराणिक विद्वान् और

समझते थे। उनके मतसे यह उदयगिरि और अस्ताचलके बीचका

। सूर्यको प्रति दिन इतनी दूरी ते करनी पड़ती है। भास्करा-

चार्य कहते हैं कि जिन विद्वानोंके लिये खगोल इतना सहज हो गया है जितना हथेलीपर रखा हुआ आंवलेका फल, वे इन दोनों बातोंको स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि सूर्यकी किरणें जहांतक पहुंच सकती हैं उस समूचे गोल-की परिधि इतनी बड़ी है अर्थात् यह उस आकाशकी सीमा है जिसे आदमी सूर्य किरणोंकी सहायतासे देखता है। इसी महाकाशमें हम ग्रहों और नक्षत्रोंको घूमते देखते हैं। यह विश्वकी सीमा नहीं है, और न यही कहा जा सकता है कि भारतवर्षीय ज्योतिषियोंके परिकल्पित नक्षत्र लोककी यह कक्षा है। क्योंकि पृथ्वीके ऊपर इन पंडितोंने जो सात वायुके स्तर कल्पित किये हैं उनमेंसे अनेक स्तर इसके ऊपर आ जाते हैं। ये सात स्तर इस प्रकार हैं—आवह, प्रवह, उद्वह, संवह सुवह, परिवह और परावह। इनमें आवह नामक स्तर वह है जो हमारी पृथ्वीके ऊपर बारह योजन तक लिपटा हुआ है। इसीमें मेघ और विद्युत आदि हैं। इसके बाद बहुत दूरतक प्रवह वायुका क्षेत्र है जो नियमित रूपसे पश्चिमकी ओर बड़े वेगसे बहता रहता है और ६० घटी या २४ घंटेमें एक पूरा चक्कर लगा देता है। इसी वायुके झकोरेमें पड़ कर पृथ्वीके ऊपरके सातों ग्रह (क्रमशः चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि) तथा समस्त नक्षत्रगण नियमितरूपसे २४ घण्टेमें पृथ्वी की एक परिक्रमा कर आते हैं। चूंकि नक्षत्रोंमें, इन पंडितोंके मतसे, गति नहीं है, इसलिये वे प्रवह वायुके झंकोरेसे ठीक समय पर अपने-अपने स्थानमें आ जाते हैं पर ग्रहोंमें गति है और वह भी प्रवह वायुकी उल्टी ओर, इस-लिये ग्रहगण २४ घण्टेमें ठीक उसी स्थानपर नहीं आ पाते जहांसे वे चले थे। यही कारण है कि हम ग्रहोंको सदा पूर्वकी ओर खिसकते देखते रहते हैं। ऊपरकी संख्या प्रवह वायुके अन्तगत पड़नेवाले क्षेत्रके बाहर नहीं हो सकती। अभी उसके ऊपर और भी पांच वायु स्तर हैं जिनके विषयमें हमें कुछ ज्ञात नहीं।

परन्तु भास्कराचार्य प्रभृति ज्योतिषी व्यवहारवादी थे [illegible] वस्तु[illegible] सम्बन्धमें कोई बहस नहीं करना [illegible]

न्तर हो न हो। इसीलिये उन्होंने ऐसी बहुत-सी बातोंका विचार छोड़ दिया है जिनका उनके मतमें कोई प्रयोजन नहीं है। इस ब्रह्माण्ड-परिधि सम्बन्धी विचारको उन्होंने बहुत महत्त्व नहीं दिया है। वे कहते हैं कि हमें यह ठीक नहीं मालूम कि ऊपरकी लिखित संख्या ब्रह्माण्डकी परिधि सम्बन्धी है या नहीं। किसीने ब्रह्माण्डकी सीमा कभी मापी नहीं। प्रमाणके अभावमें हम किसी मतको मानना नहीं चाहते। पर ब्रह्माण्ड इतना बड़ा हो या नहीं, वास्तविक बात यह है कि कल्प भरमें सभी ग्रह इतने ही योजन चला करते हैं। ज्योतिषियोंने ग्रहका कल्प भरमें ते किये हुए योजनात्मक विस्तारको ही 'आकाश' नाम दिया है। यही व्यवहारके उपयुक्त बात है। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दू ज्योतिषियोंके मतसे सभी ग्रह दूरीमें बराबर ही चलते हैं। फिर भी कोई ग्रह तीव्र गतिसे चलता हुआ और कोई मंदगतिसे चलता हुआ इसलिये दिखाई देता है कि उनके घूमनेके जो मार्ग हैं वे बराबर नहीं हैं। छोटे वर्तुल मार्गमें चलनेवाला ग्रह बड़े वर्तुलवालेके बराबर ही चलता है पर पृथ्वीसे देखनेवालेकी दृष्टिमें वह बड़े वर्तुलवालेकी अपेक्षा बड़ा शीघ्र चलता है और इसीलिये अधिक चलता दिखाई देता है। यह जो भास्कराचार्यका कथन है कि 'ब्रह्माण्ड इतना बड़ा हो या नहीं—"ब्रह्माण्ड मेतदमितमस्तु नो वा"—यही आधुनिक युगके पूर्ववर्ती समस्त जगत्के ज्योतिषियोंकी बात थी। यूरोपके ज्योतिषियोंमें भी ब्रह्माण्डके विषयमें इसी प्रकारकी उपेक्षा पाई जाती थी। यूरोपमें यद्यपि बहुत पुराने जमाने में एरिस्टार्कस नामक ज्योतिषीने (ई० पू० २५०) कहा था कि पृथ्वी स्थिर नहीं है, बल्कि अपनी धुरीपर घूम रही है और इस प्रकारका मत भारतीय आर्यभट आदि ज्योतिषियोंने भी प्रकट किया था पर वस्तुतः यह धारणा सदा बनी रही कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्डके केन्द्रमें है। टालेमीने (१५० ई०) जो ग्रहोंका क्रम नियत कर दिया था, जो हूबहू भारतीय ज्योतिषियोंके निर्धारित क्रमके [illegible] दिनतक यूरोपमें मान्य समझा जाता था। [illegible] १५४३ ई० में [illegible] कि वस्तुतः पृथ्वी केन्द्रमें

विश्वकी परिणतितकमें एक सवमान्य नियमका खोज लगाया जा सका। खुली आंखोंसे रात्रिकालीन आकाश जितना ही मनोरम दिखता था, बुद्धि-को आंखोंसे वह उतना ही रहस्य-मय दिखा।

न जाने किस अनादिकालके एक अज्ञात मुहूर्तमें सूर्यमण्डलसे टूटकर यह पृथ्वी नामक ग्रह पिण्ड सूर्यके चारों ओर चक्कर मारने लगा था। उसमें नाना प्रकारके ज्वलंत गैसोंका आकर था। इन्हींमें किसी एक या अनेकके भीतर जीवतत्वका अंकुर वर्तमान था। पृथ्वी लाखों वर्षतक ठंडी होती रही, लाखों वर्षतक उसपर तरल-तप्त धातुओंकी लहालेह वर्षा होती रही, लाखों वर्षतक उसके बाहर और भीतर प्रलयकाण्ड चलता रहा और जीवतत्त्व स्थिर अविक्षुब्ध भावसे उचित अवसरकी प्रतीक्षामें बैठा रहा। अवसर आनेपर उसने समस्त जड़ शक्तिके विरुद्ध विद्रोह करके सिर उठाया—अंकुर-रूपमें। सारी जड़शक्ति अपने प्रबल आकर्षणका संपूर्ण वेग लगाकर भी उसे नीचे नहीं खींच सकी। सृष्टिके इतिहासमें यह एकदम अघटित घटना थी। अबतक महाकर्षके विराट् वेगको किसीने प्रतिहत नहीं किया था। जीव-तत्त्व निर्भय अग्रसर होता गया। वह एक शरीरसे दूसरेमें—संततिके रूपमें संक्रमित होता हुआ बढ़ता ही गया। अनवरुद्ध अश्रान्त! मनुष्य उसीका अन्तिम परिणति है—देशमें सीमित, कालमें अस्नीम, शरीरसे नाशवान् आत्मासे अविनश्वर। वही मनुष्य इस समस्त विश्व ब्रह्माण्डकी नाप जोख करने निकला है। विराट् ब्रह्माण्ड-निकायका दूरत्व और परिमाण, उनके कोटि-कोटि नक्षत्रोंका अनिमय आवर्तनृत्य बहुत विस्मयकारी बातें हैं,सन्देह नहीं; परन्तु मनुष्यकी बुद्धि और भी विस्मयजनक है। उन समस्त ब्रह्माण्डों से अधिक प्रचण्ड शक्तिशाली,/अधिक आश्चर्य-जनक। अत्यन्त नगण्य स्थानमें रहकर, नगण्यात् नगण्यतर कालमें रहकर वह इस विपुल ब्रह्माण्डको जाननेकी इच्छा रखता है और सफल होता जा रहा है। वह विश्वका अजेय शक्ति है। ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है, यह बड़ा सवाल नहीं है, मनुष्यकी बुद्धि कितनी बड़ी है, यही बड़ा सवाल है। हमारी आस्था उसपर हो गई।

तो कोई बात नहीं कि ब्रह्माण्ड इतना ही बड़ा है या नहीं—ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा।

श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदीजीने बड़े परिश्रमपूर्वक इस ब्रह्माण्ड और पृथ्वीके संबंधकी आधुनिक जानकारियोंका संग्रह किया है। अभिनव भारतीग्रन्थमाला के सहृदय पाठकोंके हाथमें इसे देते हुए सम्पादकको हर्ष और सन्तोष अनुभव हो रहा है। इसका अगला हिस्सा 'चैतन्यका विश्वास' भी चतुर्वेदीजीकी सरल लेखनी और परिश्रमका सुन्दर उदाहरण है। हमें यह सूचित करते हर्ष हो रहा है कि उक्त पुस्तक भी अभिनव भारती ग्रन्थमालामें शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है।

—सम्पादक

कृतज्ञता-प्रकाश

यह छोटी-सी पुस्तक मैं ने ऐसे जिज्ञासु पाठकोंको लक्ष्य करके लिखी है जो इस अचरज भरे विश्वको जानने और समझनेके लिये मेरे ही समान छट-पटा रहे हैं। अत्यन्त छोटी अवस्थासे ही मेरे मनमें इस ग्रह-तारा-खचित आकाशकी वास्तविक स्थिति जाननेकी बड़ी व्याकुलता थी। कुछ विद्वानोंने मुझे जेम्स जीन्सका 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' (अचरज भरा जगत्) पढ़नेकी सलाह दी थी। मैं अत्यन्त कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूं कि इस पुस्तकने मेरी आंख खोल दी थी। गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कालेज आगराके प्रिंसिपल श्रीयुत चन्द्रमोहन चतने, जो इङ्गलैण्डसे हालहीमें लौटकर आये थे मेरी रुचि परखकर अपने घरेलू पुस्तकालयसे जेम्स जीन्सकी उपर्युक्त पुस्तक तथा कई पुस्तकें दीं। उक्त ट्रेनिंग कालेजके एक अन्य अध्यापक श्री एस० एम० नदवी महाशयने अन्य कई ग्रन्थोंके नाम बताकर मेरी क्षुधा और भी बढ़ा दी। इन पुस्तकोंने मेरी सारी शंकायें जड़से उखाड़ फेंकी। सब पढ़ चुकनेके पश्चात् गर्मियोंकी छुट्टीमें नैनीताल जानेपर हिन्दीमें कुछ लेख लिखे जिन्हें विज्ञान-परिषद्ने अपने मुख पत्र 'विज्ञान' में प्रकाशित भी कर दिये। श्रीयुत हजारी-प्रसादजी द्विवेदीको जब मैंने वे लेख दिखाये तो उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया और मेरे सम्पूर्ण अध्ययनको पुस्तकका रूप दे देनेकी सलाह दी। उस

समय अभिनव भारती ग्रन्थमाला सम्भवतः गर्भावस्थामें थी। समय और साहित्य न मिल सकनेके कारण मैं शीघ्रतावश ब्रह्माण्ड-विस्तारका हिन्दूमत न दे पाया था किन्तु द्विवेदीजी ने उसे देकर इस कमीको भी पूरा कर दिया है।

इस विषयके अध्ययनमें ट्रेनिङ्ग कालेजके एक प्रोफेसर श्रीयुत एस० एल० जिन्डल साहबसे मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली थी। ये यदि पूर्ण सहायता न देते तो सम्भव था विषय इतनी सफलतासे मैं न सुलझा सकता।

जिन जिन ग्रन्थोंसे मैंने सहायता ली है उनके लेखकों, श्रीयुत चन्द्रमोहन चक्र और श्री एस० एन० नदवी, प्रोफेसर जिण्डल, डाक्टर सत्यप्रकाश (विज्ञानके सम्पादक) तथा श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदीका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे भरपूर सहायता व प्रोत्साहन दिया।

काशी
१८-२-४१

—रामस्वरूप चतुर्वेदी

विषय-सूची

चित्र-सूची

ब्रह्माण्ड और पृथ्वी

१

ब्रह्माण्डका विस्तार

प्रायः देखा गया है कि साधारण दीख पड़नेवाली वस्तुओंके पीछे बड़ा रह
छिपा रहता है । एक समय था जब कि मनुष्यके पास दूरदर्शक आदि कोई
यन्त्र न थे । उन दिनों दृष्टिगत होनेवाले समस्त पदार्थोंमें पृथ्वी ही सबसे ब
समझी जाती थी । सूर्य और चन्द्रमा जिस आकारमें दिखाई पड़ते हैं उसी आ
के समझे जाते थे । उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक ही था कि पृथ्वी अ
है, सूर्य और चन्द्रमा इसके चारों ओर घूमा करते हैं क्योंकि यह एक साधा
था । वे इसे इन्द्रियोंसे नित्य अनुभव किया करते थे । आज भी यह
व्यक्ति नवीन ज्योतिष द्वारा वर्णित ब्रह्माण्ड-विस्तार

ब्रह्माण्ड और पृथ्वी

१

ब्रह्माण्डका विस्तार

प्रायः देखा गया है कि साधारण दीख पड़नेवाली वस्तुओंके पीछे बड़ा रहस्य छिपा रहता है। एक समय था जब कि मनुष्यके पास दूरदर्शक आदि कोई भी यंत्र न थे। उन दिनों दृष्टिगत होनेवाले समस्त पदार्थोंमें पृथ्वी ही सबसे बड़ी समझी जाती थी। सूर्य और चन्द्रमा जिस आकारमें दिखाई पड़ते हैं उसी आकार के समझे जाते थे। उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक ही था कि पृथ्वी अचल है, सूर्य और चन्द्रमा इसके चारों ओर घूमा करते हैं क्योंकि यह एक साधारण बात थी। वे इसे इन्द्रियोंसे नित्य अनुभव किया करते थे। आज भी सहस्रों ऐसे औरे [illegible] ऐसे जो नवीन ज्योतिष द्वारा वर्णित ब्रह्माण्ड-व्यापारको

कल्पना-मात्र समझते हैं। इसमें उनका दोष नहीं, क्योंकि उनके लिये यह सोच सकना बहुत कठिन है कि कोई वस्तु आधारहीन अवस्थामें आकाशमें कैसे लटकी रह सकती है। अतः पृथ्वीको सर्पोपर या हाथियों पर टिका रहना मान लेना प्राचीनोंके लिये अस्वाभाविक न था। जब आदिम मनुष्यकी दृष्टि,रात्रिमें चमकनेवाले असंख्य तारागणों पर पड़ी होगी तब उसके मस्तिष्कमें क्या क्या कल्पनायें उठी होंगी, नहीं कहा जा सकता। कुछ नक्षत्र अधिक कान्तियुक्त थ, कुछ अल्प। प्रारम्भमें ग्रह व नक्षत्रोंमें भेद स्पष्ट न था। इन प्रकाश-पिण्डोंको क्या समझा जाता था यह इससे ही विदित हो जायगा कि सप्तर्षि, ध्रुव, गुरु, शनि आदि नाम देकर मर्त्यलोकके दिवंगत पुरुषोंकी आत्मा कहा जाता था। किसी महान् पुरुषकी आत्माको नक्षत्र-प्रकाशसे जोड़ देनेकी परम्परा अब भी है। तारा टूटते देखकर प्रायः भोली जनता समझा करती है कि किसी महात्माका दिव्यलोकगमन अथवा किसी दिव्यात्माका अवतरण हुआ है। ऐसी दशामें (जब कि टिमटिमानेवाले नक्षत्रोंको जीव समझा जाता था) नक्षत्रों या राशियोंका मेष, वृश्चिक, वृषभ आदि काल्पनिक स्वरूप देना भी अस्वाभाविक न था। आदिम ज्योतिषियोंके लिए तारागणोंका सूर्य और चन्द्रमासे सम्बन्ध निकालना टेढ़ी खीर थी। यंत्र न होने पर भी उन्होंने इन्हें ढूंढ़ निकाला इस लिए उन्हें असाधारण प्रतिभासम्पन्न मानना पड़ता है। विदित होता है कि सतर्क सतत निरीक्षण और अध्ययनके पश्चात् ही वे ऐसा कर सके थे। कई वर्षोंके निरीक्षण द्वारा वे जान सके कि नक्षत्र दिनमें डूब नहीं जाते अपितु सूर्य-प्रकाशरूपी धवल चादरमें छिप जाते हैं। गहरे कुएंके जलमें तारेकी परछाईं देखी होगी अथवा पूर्ण सूर्य-ग्रहणके समय नक्षत्रोंको देखकर वास्तविकताका पता पा लिया होगा। ध्रुव की स्थिति भी वही होगी जो रात्रिमें देखा करते थे।

भारतवर्षका आकाश सब देशोंसे निर्मल व स्वच्छ रहा करता है। यहांके सप्तसिन्धु व सारस्वत प्रदेशके निवासियों ने ही संसार में सर्व प्रथम नक्षत्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया था। भारतसे गान्धार, वाह्लीक, कैकय, पारसीक प्रदेशों-का अटूट सम्बन्ध था ही वहां भी इसका प्रचार हो जाना असंगत न था। इतिहास बतलाता है कि ईसाके आठ शताब्दी पूर्व पारस व ग्रीसमें युद्ध, आक्रमण, छीना-झपटी, कन्याहरण आदि व्यापार हुआ करते थे। पारससे ज्योतिष विद्या ही क्या और भी विद्यायें यथा दर्शन, न्याय, वेदान्त इत्यादि यूनान, मिश्र और खाल्दिया पहुचा करती थीं।

अनैक्ज़ीमेण्डर (५४० ई० पू०) का मत था कि पृथ्वी निराधार अन्तरिक्षमें अचल लटकी हुई है, जिसके चारों ओर स्वर्गीय आत्मायें परिभ्रमण किया करती हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यूनानवालोंने प्रारम्भिक ज्योतिष खाल्दिया निवासियोंसे सीखा था। मिश्रके पिरामिडोंकी बनावटमें भी खाल्दियन कलाका हाथ माना जाता है।

प्रारम्भिक निरीक्षकों की दृष्टिमें ग्रहों और तारागणोंके बीच भेद स्पष्ट न था। इम्पीडोक्लीस (Empedocles ४४४ ई० पू०) ने सर्व प्रथम ग्रहोंको निश्चल प्रतीत होनेवाले तारागणोंसे भिन्न सिद्ध किया। पाइथागोरस तथा उसके साथियोंने ग्रहोंका क्रम निर्धारित किया। प्लेटो तथा अरस्तूके समकालीन (लगभग ३४० ई० पू०) ज्योतिषी यूडोक्सस (Eudoxus) ने ग्रहोंकी गतियां निश्चित कीं।

असम्भव है। सम्भवतः मङ्गलग्रहमें पाया जाता हो, क्योंकि उसमें वनस्पति-के कुछ चिह्न प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह कि सन् १८६० तक प्रगतिशील ज्योतिषियोंका ध्यान सौर ग्रहमें जीवनके अस्तित्वपर वाद-विवादमें ही लगा था। दूरदर्शक यन्त्रको उत्पन्न हुए प्रायः दो शताब्दियां हो चुकी थीं पर अभी तक ग्रहोंकी चाल तथा दूरी नापनेके झंझटमें ही लगा रहा, आगे न बढ़ सका।

दूरदर्शक यन्त्र अधिक शक्तिवाला बना और वैज्ञानिकोंका ध्यान ग्रहों और उपग्रहोंकी सतह-निरीक्षण पर गया। यह अध्ययन करनेका प्रयत्न हो चला कि वे किस धातुके बने हैं तथा कबके बने हुए हैं ? बस यहींसे ज्योतिष का वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ। सारे ज्योतिर्विदोंके मस्तिष्क में क्रान्ति सी मच गई। सबका ध्यान इसी ओर लग गया। इस विचारधाराका जन्म देने-वाला था जर्मन वैज्ञानिक किर्चहॉफ (१८६०) का आविष्कार। इसने सूर्य-सतहपर दिखाई पड़नेवाली काली रेखाओं का कारण बताया। ज्योतिष इति-हासमें प्रथम बार रहस्योद्घाटन हुआ कि सूर्यमें हाइड्रोजन, सोडियम, लोहा तथा चुम्बक, केलशियम, जिंक आदि पाये जाते हैं।

सूर्यतलमें उपलब्ध तत्वों का अध्ययन चल ही रहा था कि कुछ व्यक्तियों ने तारागणोंकी वास्तविक प्रकृति अध्ययन करनी प्रारम्भ कर दी। रोमन ज्योतिषी फादर सेचीने १८६७ तक अनुसन्धान करके ससारको बताना प्रारम्भ कर दिया कि दूर टिमटिमानेवाले तारागण सूर्य हैं—विशालकाय हैं—क्रमिक विकासकी शृङ्खलामें विभिन्न अवस्थाओंमें हैं। कोई शिशु है तो कोई किशोर, कोई युवक है तो कोई वृद्ध। सबका रङ्ग व तापमान इन बातोंका साक्षी है। किन्तु ताप-प्रक्षेपक सतह सबके हैं। विभिन्न तत्वोंसे युक्त वायुमण्डल सबके हैं, विभिन्न घनत्व सबके हैं।

उच्चातिउच्च समुन्नत प्रौढ़ मस्तिष्कमें जिस चित्रकी रुपरेखा खिंच जाती है वह क्या है ? मनुष्यका ज्योतिर्ज्ञान कितना है ? अब तकके सहस्रों वर्षोंसे संगृहीत ज्ञानकोषको अल्प मंजूषमें समाविष्ट किया जा सकता है ? यदि हाँ तो उसकी कुञ्जी प्रत्येक पाठकके हाथमें दे देना अनुचित न होगा। हम "मानव-विकास" का अध्ययन करने जा रहे हैं ; उसे समझनेके पहले यह जान लेना अत्यावश्यक है कि "भू-विकास" किस प्रकार हुआ। "भू-विकास" तभी समझमें आ सकता है जब कि "भूजन्म" के पूर्व कालीन होनेवाले घटनाचक्रों, "भूजन्म" करानेवाले कारणों आदिपर एक दृष्टि डाल ली जाय।

इस आश्चर्यजनक विश्वमें जितने ही गहरे पैठा जाय उतने ही कौतूहल-वर्द्धक रहस्य खुलते जाते हैं। आसपास की वस्तुओंको जितने ही आँख खोल-कर देखते चलें उतने ही अधिक भेद स्पष्ट होते जाते हैं। किन्तु सब वस्तुएं नेत्रोंसे (केवल नेत्रोंसे) नहीं देखी जा सकती। ईयर-कम्प तथा उससे भी सूक्ष्म पदार्थ तो अनुभूति की वस्तुएं रह जाती हैं यन्त्रोंको भी दिखलाई देन प्रारम्भ होता है तो प्रोटन्ससे (जिसका व्यास १०००,०००,०००,०००,०००,० इंच है और तौल औंसका ५०००,०००,०००,०००,० वां भाग है)। इ अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण वृहत ब्रह्माण्डकी महानसे महान वस्तु (जिसका व्या १००,००० प्रकाशवर्ष और मात्रा २००,०००,०००,००० सूर्योंके तुल्य है भी दूरदर्शक यन्त्रसे दिखाई देती है। ये दोनों छोटी से छोटी और बड़ी बड़ी वस्तुएं बिना यन्त्रकी सहायताके नहीं देखी जा सकतीं। नङ्गी आँखों इन दोनों सीमाओंके मध्यवर्ती पदार्थ ही दिखाई पड़ते हैं—यथा बन्द कमरे प्रवेशकर आनेवाली सूर्य किरणमें नाचनेवाले परमाणु, रजकण, कीट, पत विहङ्ग, तृण, लता, वृक्ष, पशु, मानव, टूटता हुआ तारा, उपग्रह, ग्रह, स

[illegible] धूमकेतु और आकाशगङ्गा। इन दिखते पदार्थोंके [illegible] अव-
[illegible] कई ऐसे हैं जिनको हम देख तक भी नहीं सके हैं अतः इनके
अस्तित्व तक नहीं जानते। इतना जानते हैं कि वे हैं पर यह नहीं जानते कि
जैसा हम देखते हैं वैसे ही हैं या इससे भिन्न हैं। उनका वास्तविक रूप
क्या है? क्या वे हैं? कितने हैं? सब स्वतन्त्र हैं या परस्पर सम्बन्धित?
हम ऐसी ही और भी बहुतसी बातोंके जाननेका यत्न नहीं करते। यदि कोई
चाहे कि इन रहस्योंको बिना किसीसे पूछे—अपनी निजी चेष्टाओंसे समझ
लिया जाय तो असम्भव है। सम्पूर्ण जीवन भर लगे रहनेपर भी वास्तविकता-
की झलक नहीं मिल सकती। हमें मानव द्वारा पूर्व सञ्चित ज्ञानराशि की सहा-
यता लेनी ही होगी। यह जानना ही होगा कि मनुष्य अबतक कितना चल
चुका है। तब उस राशिमें हम भी अपना चन्दा दे सकते हैं उससे पूर्व
नहीं। हमें सीढ़ी द्वारा चढ़कर उच्चातिउच्च मार्गमें पहुँचना है अतः अच्छा
हो कि निम्नातिनिम्न सीढ़ीपर पैर रखकर चढ़ा जाय।

हमारे सबसे निकटका ग्रह पृथ्वी है। हम नित्य इस पर चलते फिरते
रहते हैं। अतः सोचा करते हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी मिट्टी पत्थरकी ही बनी है।
जिस स्थान पर बैठे हैं उसे यदि लगातार खोदते ही चले जायें तो क्या अमे-
रिका तक मिट्टी व पानी के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा? नहीं और भी
कई पदार्थ मिलेंगे। नारियलके फलको खोलें तो विदित होता है कि पहला
खोल जटाओंका, दूसरा आवरण खोपड़ाका और तीसरी बारमें गरीका गोल
मिल जाता है ठीक इसी प्रकार पृथ्वीमें भी पहला आवरण मिट्टी व समुद्रका
तेलिया पत्थरका और तीसरा लोहेका पिण्ड। जिस मिट्टीको हम देख
उसकी गहराई ३० मीलसे अधिक नहीं है। ऐसा समझना भूल
क पृथ्वीके अन्दर मिट्टी ही मिट्टी है।

जैसे जैसे भीतर प्रवेश करते आयें घनत्व बढ़ता जाता है। यहां तक कि पृथ्वीके मध्य भाग लोहा और स्टील तक पहुँचते-पहुँचते ५५ हो जाता है। यह बड़ा कड़ा पदार्थ है। इसी लौहपिण्डमें चुम्बककी शक्ति निहित है जो कि आकाशीय वस्तुओंको पृथ्वीकी ओर खींचा करती है। पृथ्वीकी क्रमिक रचनाका दिग्दर्शन द्वितीय अध्यायमें किया जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि यह भी ग्रह समितिका एक सदस्य है। सब सदस्योंका कार्य-क्रम एक ही है—सूर्य की प्रदक्षिणा करना। सबके भगणकाल भिन्न हैं अतः परिक्रमा करनेमें समय भी भिन्न भिन्न लगता है। यदि हम सब ग्रहोंको यथाक्रम एक पंक्तिमें सजाकर रखें तो सूर्यके बाद ये ग्रह इस प्रकार रखे जायेंगे बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह या स्फुटपिण्ड, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो। इनकी सूर्यसे दूरी ४, ७, १०, १६, २८, ५२, १००, १९६, ३८८ के अनुपातसे है।

इसे कई प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की गई है। यदि अपनी पृथ्वीको एक ऐसी गेंद माने जिसका व्यास १ इंच हो तो सूर्य इतना बड़ा चक्र होगा जिसका व्यास अर्थात् धुरा ९ फीट तथा पृथ्वीसे दूरी ३१३ गज़ होगी। इसी मापसे चन्द्रमाकी दूरी २½ फीट, मंगलकी १७५ फीट, बृहस्पतिकी १ मील, शनि की २ मील, यूरेनेसकी ४ मील, नेपच्यूनकी ६ मील और प्लूटोकी लगभग १२ मील होगी।

नवग्रहोंके आकारको ध्यानपूर्वक देखनेसे विदित होता है कि बुधसे जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते हैं आकार बढ़ता जाता है यहां तक कि ठीक मध्यमें पहुंचने पर बृहस्पतिका आकार सबसे बड़ा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि बहुत समय पहले हमारे सूर्यके पाससे होकर एक बड़ा सूर्य निकला था। उसने हमारे सूर्यमें ज्वार भाटा उत्पन्न करके सिगारनुमा भाग खींचा, इसी खिंचे

भागसे प्लूटो, नेपच्यून, शनि आदि बने। इसका सविस्तार वर्णन अगले ायमें करेंगे। आगे चलकर सूर्यने ग्रहोंसे उपग्रह उत्पन्न किए।

वह ग्रह जिसका अस्तित्व हाल ही में विदित हुआ है—प्लूटो है। इसे १९३० ई० की जनवरीको टॉमवाऊ ने सर्वप्रथम देखा था यद्यपि सन् १४ में अमेरिकन ज्योतिषी लावेलने इसके अस्तित्वकी कल्पना कर ली । हमारी पृथ्वीको सूर्य-परिक्रमामें एक वर्ष लगता है, प्लूटोको २४९'१७ । अभी अनुसन्धान हो रहा है। ठीक ठीक विदित नहीं हो पाया है कि ग्रह किस धातुका है। यह आकारमें तो पृथ्वीसे कई गुना बड़ा है, पर ारानुसार भास्वर नहीं होता। सब ग्रह तो सूर्यसे उत्पन्न हुए माने जाते हैं इसकी उत्पत्ति संदिग्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अन्य मण्डलका य है धोखेसे सौरमण्डलमें पदार्पण कर आया तबसे सूर्यने वन्दी बना ा। प्लूटो से भी आगे किसी ग्रहका अस्तित्व विदित नहीं है। सम्भव है, ष्यमें पता चले।

नवग्रहोंकी विशेषताओंकी सारणी दी जाती है :—

ग्रह नाम	तापक्रम	दिनमान	वर्ष परिमाण	सूर्यसे दूरी	विशेषतायें
प्लूटो	२४०° सेन्टीमीटर		२४९ वर्ष		अभी हाल ही में सन्, ३१ में पता लगा है।
नपच्यून	२००° से०		१६'९ वर्ष	२,७९,२०,०००००मी.	
यूरेनस	१८०° से०	१०½ घंटे	८३ वर्ष	१,७८,२०,०००००मी.	शीतल गैसका पिण्ड शनिसे भी अधिक ठंढी सतह वाला।
शनि	१५०° से०	१० घं० १४ मि० २४ से०	२९½ वर्ष	८८,६०,००,००० मी.	आकर्षण शक्ति पृथ्वीसे मिलती जुलती। विचित्र धातुओंसे निर्मित। उसके चारों ओर हिमराशि, कारबनके ठंढे मेघ छाये रहते हैं।
बृहस्पति	१४०° से०	९ घंटा ५३ मिनट	१२ वर्ष	४८,३०,००,००० मी.	सब ग्रहोंमें स्थूल, पर द्रुतगामी। ठोस कारबन डाई आक्साइडके मेघ। अन्य गैसें तरल व प्रस्तरीभूत दशा में सम्पूर्ण ग्रह लौह धातु-निर्मित। सतह हिमाच्छादित। भूमि ऊंची नीची, महा शीत गैसका वायुमंडल।

	दिनमान	वर्ष परिमाण	सूर्यसे दूरी	विशेषतायें
तक	२४ घंटा ३७ मि०	६८६ दिन	१४,२०,००,००० मी.	आकारमें पृथ्वीसे छोटा, अतः गुरुत्व शक्ति कम । सतह चिकनी मिट्टी की। वायुमण्डल पृथ्वी सा। आक्सीजन व जलवायु का होना । नहरों तथा वनस्पतियोंका देख पड़ना । उष्णताका रुके न रहना । प्रत्येक रात्रिको पाला प्राणिअस्तित्व संदिग्ध।
शुक्र २५° से०	२० दिनसे अधिक	२२४ दिन	६,७०,००,००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना, विवादास्पद वायुमण्डलका होना निश्चित । सूर्य की ओर सदा एक रुख ।
बुध ३५०° से०	८८ दिन	८८ दिन	३,६०,००००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना वन्द । वायुमण्डलका अभाव । अत्यल्प होनेसे कोई गैस रोक नहीं सकता ।
सूर्य ६०००° से० सतह ४०,०००,०००° मध्य केन्द्र में	+ जन्मसे आज तक दिन ही है	+ आवश्यकता नहीं	०	

ग्रहनाम	तापक्रम	दिनमान	वर्ष परिमाण	सूर्यसे दूरी	विशेषतायें
ल	७०° से लेकर १०° तक	२४ घंटा ३७ मि०	६८६ दिन	१४,२०,००,००० मी.	आकारमें पृथ्वीसे छोटा, अतः गुरुत्व शक्ति कम। सतह निकली मिट्टी की। वायुमण्डल पृथ्वी सा। आक्सीजन व जलवायु का होना। नहरों तथा वनस्पतियोंका देख पड़ना। उष्णताका रुके न रहना। प्रत्येक रात्रिको पाला प्राणिअस्तित्व संदिग्ध।
		२० दिनसे अधिक	२२४ दिन	६,७०,००,००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना, विवादास्पद वायुमण्डलका होना निश्चित। सूर्य की ओर सदा एक रुख।
		८८ दिन	८८ दिन	३,६०,००००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना बन्द। वायुमण्डलका अभाव। अत्यन्त होनेसे कोई गैस रोक नहीं सकता।
		+ जन्मसे आज तक दिन ही है	+ आवश्यकता नहीं	०	

इनमें बहुत थोड़ा तापक्रम है । यदि बुधसे लेकर सब ग्रहोंका तापक्रम एक एक करके देखें तो विदित होता है कि ज्यों ज्यों सूर्यके निकट पहुँचते जाते हैं तापक्रम बढ़ता जाता है । बहुधा साधारण जनताकी धारणा रहती है कि निरभ्र रात्रिमें चमकनेवाले ग्रहोंमेंसे शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र आदि अग्निपिण्ड हैं तभी चमकते देख पड़ते हैं । किन्तु यह धारणा भ्रममूलक है । सूर्यसे अत्यन्त दूर बसे पांच ग्रहों—प्लूटो, नेपच्यून, यूरेनस, शनि और बृहस्पति मेंसे प्रत्येक ग्रह इतना ठंडा है कि वहाँ बर्फ जमी रहती है । उनके वायुमण्डलमें मिथेन कारबनडाइऑक्साइडके बादल छाये रहते हैं । शेष चार ग्रहों—मंगल, पृथ्वी, शुक्र, बुधमें मंगल सबसे ठंडा है किन्तु इतना ठंडा नहीं है कि वनस्पति को भी न पनपने दे—पृथ्वी शीतोष्ण कटिबन्धमें है । शुक्र कुछ कुछ उष्ण, बुध अधिक उष्ण । फिर सूर्यका तो पूछना ही क्या है । बुधको छोड़कर सबमें किसी न किसी भाँतिका वायुमण्डल पाया जाता है । पूछा जा सकता है कि प्लूटोसे बुध तकके ग्रह जलते नहीं हैं फिर भी वे क्यों चमकते प्रतीत होते हैं । चन्द्रमा भी तो नहीं जलता फिर भी प्रकाशित रहता है । यदि एक पिण्ड सूर्य-प्रकाशका प्रतिबिम्ब फेंक सकता है तो क्या दूसरे पिण्ड इसी नियमसे प्रेरित होकर समान आचरण नहीं कर सकते ? अन्य ग्रह भी सूर्य-प्रकाशका प्रतिबिम्ब फेंक सकते हैं । तब तो हमारी पृथ्वी भी इन ग्रहोंको कान्तियुक्त प्रतीत होती होगी ? अवश्य !

यह कान्ति कैसी है ? एच० एच० रसेलका कहना है कि चन्द्रमासे देखने पर पृथ्वी पूर्णेन्दुसे चालीस गुना अधिक कान्तियुक्त दिखेगी । शुक्रसे देखनेपर, यहाँसे दिखलाई पड़ने वाले शुक्र-प्रकाशसे ६ गुनी प्रभायुक्त दिखेगी । वहाँसे चन्द्रमा इतना चमकीला दिखेगा जितना कि बृहस्पति हमें दिखता है—चन्द्रमा पृथ्वीके अत्यन्त निकट देख पड़ेगा । वहाँके आकाशमें चन्द्रमा व पृथ्वी

इसमें पहला कोष्ठ तापक्रमका है। यदि ऊपरसे लेकर सब ग्रहोंका तापक्रम एक एक करके देखें तो विदित होता है कि ज्यों ज्यों सूर्यके निकट पहुँचते जाते हैं उष्णता बढ़ती जाती है। बहुधा साधारण जनताकी धारणा रहती है कि दिखलाई पड़नेवाले ग्रहोंमेंसे शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र आदि अग्निपिण्ड हैं तभी चमकते देख पड़ते हैं। किन्तु यह धारणा भ्रममूलक है। सूर्यसे अत्यन्त दूर वाले पांच ग्रहों—प्लूटो, नेपच्यून, यूरेनस, शनि और बृहस्पति मेंसे प्रत्येक ग्रह इतना ठंडा है कि बर्फ जमी रहती है। उनके वायुमण्डलमें शीतल कारबनडाइऑक्साइडके बादल छाये रहते हैं। शेष चार ग्रहों—मङ्गल, पृथ्वी, शुक्र, बुधमें मङ्गल सबसे ठंढा हैं किन्तु इतना ठढा नहीं हैं कि बनस्पति को भी न पनपने दे—पृथ्वी शीतोष्ण कटिबन्धमें है। शुक्र कुछ कुछ उष्ण, बुध अधिक उष्ण। फिर सूर्यका तो पूछना ही क्या है। बुधको छोड़कर सबमें किसी न किसी भाँतिका वायुमण्डल पाया जाता है। पूछा जा सकता है कि प्लूटोसे बुध तकके ग्रह जलते नहीं हैं फिर भी वे क्यों चमकते प्रतीत होते हैं। चन्द्रमा भी तो नहीं जलता फिर भी प्रकाशित रहता है। यदि एक पिण्ड सूर्य-तापका प्रतिबिम्ब फेंक सकता है तो क्या दूसरे पिण्ड इसी नियमसे प्रेरित होकर समान आचरण नहीं कर सकते? अन्य ग्रह भी सूर्य-प्रकाशका प्रतिबिम्ब फेंक सकते हैं। तब तो हमारी पृथ्वी भी इन ग्रहोंको कान्तियुक्त प्रतीत होती होगी? अवश्य!

यह कान्ति कैसी है? एच० एच० स्पेंसरका कहना है कि चन्द्रमासे देखने पर पृथ्वी पूर्णेन्दुसे चालीस गुना अधिक कान्तियुक्त दिखेगी। बुधसे देखनेपर, यहाँसे दिखलाई पड़ने वाले शुक्र-प्रकाशसे ६ गुनी प्रभायुक्त दिखेगी। वहाँसे चन्द्रमा इतना चमकीला दिखेगा जितना कि बृहस्पति हमें दिखता है—चन्द्रमा

अर्थात् जब यह सब अपने पिताके शरीरमें ही व्याप्त थे उस समय सूर्यका आकार कितना विशाल रहा होगा कल्पनातीत है।

अब सूर्यकी बात ली जाय। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हमारा सूर्य भी एक नक्षत्र है। रात्रिके समय निर्मल आकाशकी ओर देखनेपर अगणित तारागण टिमटिमाते दृष्टिगत होते हैं। यह हमसे इतनी दूर हैं कि अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। सूर्य-प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें ८ मिनट लगते हैं जब कि प्रकाशकी गति १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। निकटतम नक्षत्र केंटिसमेंसेन्टारी हमसे इतनी दूर है कि वहांसे प्रकाश आनेमें ४½ वर्ष लग जाते हैं। इससे भी आगे बढ़नेपर गगनमण्डलमें अनेकों नक्षत्र ऐसे मिलते हैं जो सहस्रों प्रकाशवर्षकी दूरी पर हैं। और भी आगे बढ़नेपर हम ऐसे नक्षत्रों तक पहुँचते हैं जिनसे प्रकाश आनेमें एक एक लाख वर्ष लग जाते हैं। हमारा स्थानीय नक्षत्रमण्डल यहीं तक है। हमारा सूर्य जिस नक्षत्र-समितिका सदस्य है उसकी सीमा १ लाख प्रकाशवर्ष है। इन नक्षत्रों मेंसे प्रत्येक नक्षत्र इतना बड़ा है कि उससे सहस्रों सूर्य बनाए जा सकते हैं। इनकी कान्ति भी अपने सूर्यसे कई गुना अधिक है किसी किसीकी कांति दस सहस्र गुनी तक है।

इन नक्षत्रोंकी संख्याका इतिहास बड़ा विचित्र है। टालेमी ने सन् १३ में इनकी संख्या १,०२५ आंकी थी। जे० जी० काउपर का कहना है नक्षत्रोंकी प्रथम गणनाका श्रेय हिन्दू ज्योतिषियोंको है। डी० मॉरगन कहना है कि हिन्दू गणनाका ठीक काल नक्षत्रोंकी स्थिति देखते हुए विदि होता है कि ईसासे ४००० वर्ष पूर्व रहा होगा। दूसरी बार समरकन्द प्रसिद्ध विद्वान उलगबेगने सन् १४५० में की। तदनन्तर टाइकोब्राहेने १५८० में १००५ नक्षत्रोंकी स्थिति अंकित की। जिसके आधारपर कैपल अपना सिद्धान्त निर्धारित किया।

उस समय तक नग्न नेत्रोंके अतिरिक्त कोई भद्दा यन्त्र भी न था जिससे स्वर्गीय दीपपुञ्ज गिने और चित्रित किये जाते। यही कारण था कि टाल्मी और टाइकोने लगभग १००० से अधिक अङ्कित न कर पाए।

पहला टेलिस्कोप २½ इञ्चका था। इसकी सहायतासे आर्जीलैण्डरने ३००,००० तारोंको आंका था। माउण्ट विल्सनकी प्रयोगशालामें १०० इञ्चके टेलिस्कोप द्वारा कुल १,०००,०००,०००,००० फोटोग्राफीके योग्य तारोंकी गणना की गई है। अब सन १९३८-३९ में २०० इञ्चका टेलिस्कोप तैयार हुआ है देखें अब कितने नक्षत्रोंका पता चलता है।

केपटीन तथा इसके साथियोंका अध्ययन बतलाता है कि हमारे सूर्यके आसपास पुरा पड़ोसमें ४७,०००,०००,००० नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रोंकी गति विधि प्रवृत्ति आदिमें अद्‌भुत समानता है। इन सब नक्षत्रोंसे मिलकर स्थानीय "विश्व द्वीप" बना है। ज्योतिषियों एवं वैज्ञानिकोंका मत है कि जिस प्रकार बुध, शुक्र आदि ग्रह एक समय सूर्यमें समाये हुए थे उसी प्रकार यह सब नक्षत्र भी किसी समय एक राशिमें समाये हुए थे—अलग अलग न थे—आपसमें जुड़े हुए थे। जिस प्रकार नवग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार यह सब नक्षत्र क्षिप्रगतिसे किसी एक महान नक्षत्र (सम्भवतः ध्रुव) को केन्द्रमें रखकर परिक्रमा करते हैं। गाड़ीके पहियेमें परिधिके समीपवाली पंखुड़ियाँ अधिक वेगसे और केन्द्रकी पंखुड़ियाँ कम वेगसे घूमती हैं। ठीक इसी प्रकार जो नक्षत्र इस हमारे स्थानीय विश्वचक्रके सिरे पर हैं अधिक वेग से दौड़ते हैं और जो मध्यके निकट हैं वे कम वेगसे यहाँ तक कि ठीक मध्यवाला नक्षत्र (ध्रुव) घूमता ही नहीं।

इस हमारे स्थानीय विश्व द्वीपके चारों ओर लिपट कर आकाशगंगा कटिमेखला का काम देती है। जिस विश्वद्वीपमें हम हैं उसका व्यास

३००,००० प्रकाशवर्ष [1] तथा मोटाई ६०००० प्रकाशवर्ष है। स्थानीय विश्वद्वीपमें केवल नक्षत्र ही नक्षत्र नहीं है अपितु नक्षत्रपुञ्ज, छोटी मोटी नीहारिकाएँ, प्रकाश मेघ, आदि भी सम्मिलित हैं। नक्षत्र पुञ्जसे तात्पर्य उस प्रकाश चादरसे है जिसमें सहस्रों नक्षत्र टँके हों। यह दो प्रकारके हैं एक गोल कन्दुकाकार दूसरे विस्तृत जलदाकार। प्रसिद्ध वैज्ञानिक शैपलेने पता लगाया है कि प्रसरतम पुञ्जमें ५०,००० तारोंसे कम नहीं हैं। यह तारे धुँधले दीख पड़ते हैं जिससे विदित होता है कि बहुत दूर हैं। सेन्टारी नामक नक्षत्रपुञ्जकी दूरी प्रायः २१,००० प्रकाशवर्ष और हरक्यूलीजकी २३,००० प्रकाशवर्ष आँकी गई है।

एक नक्षत्रपुञ्जका प्रकाश-सम प्रायः हमारे सूर्यप्रकाशसे ३००,००० गुना होगा तथा उसकी मात्रा १००,००० सूर्यके तुल्य।

नीहारिकाएँ भी दो प्रकारकी हैं—गोल और चपटी। गोल नीहारिकाओंकी संख्या लगभग १५० है। इनके मध्यमें एक बड़ासा नक्षत्र है। इन नीहारिकाओंमें से प्रत्येकका व्यास प्रायः ७००,०००,०००,००० मील है जब कि हमारी पृथ्वीका ८००० मील है।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए नक्षत्र, नक्षत्रपुञ्ज और नीहारिकायें आदि मिलाकर हमारे स्थानीय विश्वद्वीपकी सीमा पूरी होती है।

क्या हमारे स्थानीय विश्वद्वीपके अतिरिक्त और भी विश्वद्वीप हैं?

१—पहले ही बताया जा चुका है कि प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० मील चलता है। इस हिसाबसे वह १ वर्षमें जितनी दूरी तै कर लेता है उसीको एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। ज्योतिषी लोग आकाशकी दूरी इसी पैमानेसे नापते हैं।

हैं, और बहुत हैं। वे इतने दूर हैं कि १०० इञ्चवाले टेलिस्कोपमें भी बिन्दुमात्र या अधिकसे अधिक कन्दुक मात्र प्रतीत होते हैं। कोई कोई तो इतने छोटे दिखाई पड़ते हैं जितने छोटे कि नग्न नेत्रोंको दूर टिमटिमानेवाला तारा। हमारे स्थानीय विश्वद्वीपका पड़ोसी विश्वद्वीप अण्ड्रांमीडा कहलाता है। इसमें अरबों नक्षत्रोंका प्रकाश होता रहता है। फिर भी दूरदर्शक यन्त्रको उतनासा ही प्रतीत होता है जितना कि निर्धन नेत्रको एक छोटा तारा प्रकाशके विद्यार्थियोंने गणित तथा गहन निरीक्षण द्वारा देखा है कि उसकी दूरी १०००,००० प्रकाशवर्ष है। वास्तविक मानव-प्रादुर्भावके समय चला हुआ प्रकाश आज तक यहाँ नहीं पहुँचा है।

इस अन्ड्रांमीडा के अतिरिक्त लाखों अन्य विश्वद्वीप टेलिस्कोपमें टिम-टिमाते नजर आते हैं किन्तु शेष सब अस्पष्ट और धुँधले हैं। साधारण अनुपात द्वारा आंकनेसे विदित हुआ है कि धुँधलेसे धुँधला विश्वद्वीप जो सम्भवतः अब तक देखे गये विश्वद्वीपोंमें सबसे दूर हैं—१४०,०००,००० प्रकाशवर्ष है। अर्थात् अन्ड्रामीडासे १४० गुना दूर। पाठकोंको आश्चर्य होता होगा कि इतनी इतनी लम्बी दूरियाँ कैसे आँकी जाती हैं। सम्भवतः कुछ पाठक इन बातोंको कोरी कल्पना और गप्प कह दें तो भी आश्चर्य नहीं। यहाँ जितनी बातें हो रही हैं कोई स्वरचित या स्वगढ़ित बात नहीं है—जो बात विश्वविज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुकी है उसीका परिचय कराया जा रहा है। दूरी नापनेका और फिर विश्वदीपोंका, नियम सर्वप्रथम श्रीमती हैनरेटालीविट ने निर्धारित किया था। उन्होंने विचित्र प्रकारके नक्षत्रोंको देखा था। ये नक्षत्र एक नियत समय (कोई-कोई १५ घण्टे और कोई कोई पांच छः दिन) तक ज़ोरोंसे धधकते रहते, शान्त हो जाते, फिर उतने ही दिनों तक धधकते रहते और फिर उतने ही समय

तक शान्त रहते। इन्हें Cepheids (सीफ़ेड्स) कहा जाता है। इन नक्षत्रोंके चमकनेकी अवधि तथा उनकी दूरीमें स्थिर सम्बन्ध है। जो जितनी अधिक दूर होगा उतनी ही कम देर तक धधकता दीखेगा। टेलेस्कोप द्वारा देखनेसे पता चलता है कि इन विश्वद्वीपोंमें भी सीफ़ेड जातिके प्रकाशपुञ्ज हैं—उनके धधकनेकी मात्रा व अवधि देखकर हिसाब लगा लिया है कि वे कितनी दूर व कितने प्रकाशवान् हैं। इसी प्रकारके गणित द्वारा अन्ड्रामीडाकी दूरी १,०००,००० प्रकाशवर्ष निकाल ली गई है।

इतने दूर चमकने वाले विश्वद्वीपोंका चित्र मिनट दो मिनटमें नहीं लिया जाता—जैसा कि पृथ्वीकी वस्तुओंका लिया करते हैं कि इधर बटन दबाया उधर फ़ौजी सलामके ठाठसे नमस्ते किया, हँसमुख आकृति लानेके लिये मुद्रा बना ही रहे थे कि फ़िल्ममें आ छपे। एक सेकेण्ड में ही हँसी और बेहँसी के बीच का फोटो आ गया। इतनी शीघ्रता ज्योतिर्जगत्में नहीं होती वहाँ तो सुदूरतम नीहारिका के प्रकाश-विहग को पकड़ने के लिये फिल्म-पींजड़े का द्वार कई घंटों खोले रखना पड़ता है। ज्योतिषी मनाया करते हैं कि कब रात्रि आवे और कब वे पींजड़े का मुख खोलें। चित्रपट को लगातार खुला रखते हैं, उनका क्या बिगड़ता है। अमावस्या में नक्षत्रों, निहारिकाओं, विश्व-द्वीपों के अतिरिक्त किसका प्रतिबिम्ब चित्रपट पर पड़ेगा। जिधर देखा नक्षत्र-गुच्छ नहीं है, शून्य है उधर ही तेज़से तेज़ दूरबीन व कैमरेका मुंह घुमा दिया। घंटों खुला रहने दिया। हर बार चार [illegible] नेरे फ़िल्म पलटते रहते हैं—क्यों[illegible]
स्थान पर [illegible]

पता चलेगा कि प्रत्येक विश्व-द्वीपसे १,५००,००० मील प्रति घण्टा दूर भागता जा रहा है। क्यों?

आकर्षण-सिद्धान्तके अनुसार निकटवर्ती वस्तुओंमें आकर्षण अधिक होता है, किन्तु ज्यों ज्यों दूरी बढ़ती जाती है आकर्षण घटता जाता है विकर्षण बढ़ता जाता है। लाखों अरबों मीलकी दूरी पर आकर्षण सर्वथा लुप्त हो जाता है। केवल विकर्षण अर्थात् तनाव ही उन दो वस्तुओंके बीच रह जाता है। तभी तो आकाशगङ्गासे बाहरके नक्षत्र-पुञ्जोंमें ही दूर भागनेकी क्रिया दृष्टिगोचर होती है। सूर्यकी आकर्षणशक्ति सौरमण्डल, अधिक-से-अधिक प्लटो तक प्रभावशील है उसके पश्चात् प्रभावहीन हो जाती। पिछले वर्णनमें हमने देखा कि हमारे सूर्य जैसे तथा इससे भी सहस्रगुना बड़े सूर्य लाखों हैं—नक्षत्र-पुञ्ज है, प्रकाश सरितायें हैं, नीहारिकायें हैं। ये सब मिलकर स्थानीय विश्व-द्वीप बनाते हैं। तात्पर्य यह कि यह सब भिन्न आकर और स्वभाववाले आलोक-सरोवर एक ही दिशामें घूमते रहकर एक महान शक्ति द्वारा सञ्चालित होनेका परिचय देते हैं। वह शक्ति—स्थानीय विश्व-द्वीपकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति हमारे सूर्य और पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे असंख्यगुना बड़ी है तब तो इस सूर्य जैसे सहस्रों पिण्डोंको नियन्त्रित रख पाती है। किन्तु इस शक्तिकी पहुँच एक निश्चित दूरी तक है। उसके आगे दूसरे विश्व-द्वीपकी राज्य सीमा प्रारम्भ हो जाती है। यह भी अपने दायरेके भीतरवाले प्रकाशमेघोंको मध्यशक्ति द्वारा आकर्षित किये रहता है किन्तु उसका हमारे विश्व-द्वीपपर प्रभाव नहीं पड़ता। दो विश्वद्वीपोंके बीच तनाव या विकर्षण है। इसी प्रकार न जाने कितने विश्व-द्वीप हैं यह सब कहां कहांतक फैले हैं, कबसे फैलना आरम्भ हुआ आदि मनोरञ्जक प्रश्न हैं जिनका उत्तर देनेके लिये, विज्ञानने १९२९ से लड़खड़ाते हुए संदिग्ध पैरोंसे आगे बढ़ना प्रारम्भ किया है।

जिस प्रकारके स्थानीय विश्वद्वीप तथा पड़ोसी एण्ड्रामीडा का ऊपर वर्णन किया जा चुका है उसी प्रकारके २०,००,००० (बीस लाख) विश्वद्वीप अनन्त शून्यमें लड़खड़ाते हुए और १००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे भागते हुए देखे गये हैं। पृथ्वीपरसे देखनेवालोंको यह विश्वद्वीप केवल नीहारिकावत् प्रतीत होते हैं। आकाशके जिस भागकी ओर टेलेस्कोपका मुँह घुमाकर देखें एक न एक इसी प्रकारकी विश्वदीप-नीहारिका दिखाई देगी। इससे विदित होता है कि ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विकीर्ण हैं, कोई स्थान बचा नहीं। इस स्थानकी सीमा कहां तक है, नहीं कहा जा सकता। डाक्टर 'हिल' का अनुमान है कि दूरातिदूर चमकनेवाले विश्वद्वीपके दस गुना आगेसे अधिक (अर्थात् १४०,०००,०००×१० डेढ़ अरब प्रकाश मीलसे आगे) स्थानका अभाव है। स्थान नहीं है तब क्या है; इसका उत्तर ठीक-ठीक नहीं निकल सका। अनुमान है कि केवल शून्य, शून्य और महाशून्य होगा। कितनी दूर तक, कुछ पता नहीं।

पृथ्वी गोल है—पूर्वकी ओर नाककी सीधमें चले जाइये कहीं न मुड़िये अन्तमें आप अपनी जगह आ जायंगे। ठीक यही सिद्धान्त विशाल ब्रह्माण्डके लिये लागू होता है। ब्रह्माण्ड गोल है—ससीम है—सान्त है।

सवाल यह है कि यदि ब्रह्माण्डका विस्तार सीमित है तो आकृति किस प्रकारकी है?

आकृतिकी रेखा अङ्कित करनेके लिये वैज्ञानिकोंने कई रूपकोंसे काम लिया है। आर्थर एडिंगटन कहते हैं कि पानीमें उठनेवाले बुलबुलेकी भांति अण्डाकार है, लेमेटेअर फर्माते हैं कि आतिशबाजीके गोलेकी भांति है, जोन्स साहबका मत हैं कि रबर बैलूनकी शकलका है। बहरहाल सबका सिद्धान्त एक ही प्रकारकी आकृतिसे है। भारतीय ऋषियोंने भी दिव्य चक्षु द्वारा इसकी

रूपरेखाका नामकरण ब्रह्म+अण्डसे किया था ताकि केवल नामसे ही स्वरूप व्यक्त हो जाय।

ब्रह्माण्ड के स्वरूप की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है—समस्त भूमण्डल पर एक दूसरे से सटाकर मनुष्य खड़े कर दिये जायँ। पृथ्वीके भीतर ठीक केन्द्र से लेकर परिधि तक कंकड़, पत्थर, मिट्टी, पानी, खनिज आदि न होकर मनुष्य ही मनुष्य खड़े होते तो जो आकृति बनती वह ब्रह्माण्डकी होती। पृथ्वी की परिधि-सतह पर खड़े होने वाले व्यक्ति सुदूर टिमटिमाने वाले विश्व-द्वीप हैं, सब गोल घेरे में हैं। केन्द्र से व परिधि के बीच खड़े होने वाले व्यक्ति अगणित तारागण, नीहारिका, विश्वद्वीप आदि हैं। हमारे सौरमण्डल की स्थिति केन्द्र के निकट है या परिधिके, कुछ कहा नहीं जा सकता।

यदि ब्रह्माण्ड सान्त और ससीम है तो घनफल, पदार्थमात्रा, और व्यास आदि भी विदित होना चाहिये।

हबिल के कथनानुसार इसका व्यास १,४००,०००,००० (क़रीब डेढ़ अरब) प्रकाशवर्ष है। उन्होंने लम्बाई-चौड़ाई, गहराई आदिकी गणना करने के पश्चात् देखा तो उसके घनफलको ३८४,००१,०००,०००,०००,०००, ०००,०००,०००,०००, ०००, ०००,०००,०००,०००, ०००, ०००००, ००० वर्गमील (अर्थात् ३८४ × १०^{२०} वर्गमील) पाया।

अखिल ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले सब प्रकाशपिण्डों को मिला दिया जाय तो हमारे जैसे १०.०००.००० ००० ७०० ०००,०००,०००,०००

२

स्थान, काल और पदार्थ

प्रथम अध्याय में वर्णित इस ब्रह्माण्ड में तीन के अतिरिक्त चौथी व
नहीं है। वे तीन वस्तुयें हैं—स्थान, काल और पदार्थ। जो कुछ घटना होत
है वह इन्हीं तीनों के मेल से होती है। हम किसी तारा को टूटता हुअ
देखते हैं तो किसी समय में, किसी विशेष स्थान या दिशा में देखते हैं सा
ही साथ जिसे देखते हैं वह कुछ न कुछ पदार्थ होता है। आइये इन तीन
—समय, स्थान, पदार्थ को एक एक करके देखें।

समय क्या है? सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि समय
कही जाने वाली कोई वस्तु ही नहीं है। यह भ्रम है जिसे समय कहा करते हैं।
की माप दिन व रात्रि से किया करते हैं। जितनी देर सूर्यप्रकाश मिलता
उतनी देर को दिन और जितनी देर सूर्य प्रकाश का अभाव रहता
को रात्रि कहा करते हैं; किन्तु उन नक्षत्रों की तो कल्पना कीजिये
प्रकाश का कभी अभाव ही नहीं होता। वहां किसे दिन किसे रात

कहेंगे—वहां तो जबसे जन्म हुआ तबसे इस क्षण तक प्रकाश ही प्रकाश रहता आया है। सूयको ही ले लीजिये—वहां आज तक रात्रि नहीं हुई, समय का लम्बा असीम सागर सा लहरा रहा है। विश्व-द्वीप जहां अन्धकार का नाम नहीं, जहां प्रकाश-सरितायें लहराया करती हैं वहां का दिन कितना बड़ा होता होगा यह केवल कल्पना की बात होगी। आज तक एक सी ही दशा रही है—प्रकाश, प्रकाश, प्रकाश। यह भी पता नहीं कि अब तक आधा दिन हुआ है या चौथाई। तात्पर्य यह कि दिवसके अतिरिक्त अन्य वस्तुका नाम तक नहीं। जब एक ही दिन का अन्त नहीं हुआ तब सप्ताह, मास, वर्ष, युग, मन्वन्तर आदिके अस्तित्वकी कल्पना कौन कर सकता है। इसी प्रकार दूसरे पहलूसे भी देखिये कि जब एक दिनकी ही अवधि निश्चित नहीं हो पाई है तब उसे पहर, घड़ी, पल अथवा घंटा, मिनट, सेकंड में कैसे विभाजित कर सकते हैं—विभाजित किया किसे जाय—जब कुछ हो तब तो!

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के आते ही हम प्रसन्न होकर कहने लगते हैं, "आज नवीन वर्ष प्रारम्भ हो रहा है।" अन्य दिनों की अपेक्षा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन में उदय होते समय अस्त होते समय क्या विशेषता है? कुछ नहीं। फिर कैसे कहा जा सकता है कि अमुक दिन नवीन दिन है, प्रथम दिन है। इसी प्रकार की धारणायें वर्ष, मास, सप्ताह, व चौबीस घण्टे का दिन-रात मानने के पीछे छिपी हैं। क्या पता कि वर्ष का पहिया बारह मास में ही पूरा घूमता है, एक ही प्रकार से सूर्य निकला हुआ करता है। वर्षचक्र को, भी घूमते जाने दीजिये। सात दिनों का ही सप्ताह प्रकृति में होता है। प्रत्येक रविवार के पश्चात् सोमवार फिर आता है—क्या देख कर कह दिया। आज बुध है क्योंकि कल मंगल था और कल बृहस्पत होगा आदि बातों की गहराई तक आया जाय तो पता लगेगा जिसे समय मान बैठे हैं वह वास्तवमें

कुछ है नहीं, अपनी सुविधाके लिये सांसारिक काम सुचारु रूपसे चलानेके लिये एक पूर्णिमासे दूसरा पूर्णिमा तक होने वाले दिनोंकी संख्या जोड़ लेते हैं और कह देते हैं कि दो पखवारेका एक मास—किन्तु यदि दुर्भाग्यसे चन्द्रमा न होता अथवा यदि होता तो सूर्यपिण्ड की तरह नित्य पूरा निकला करता तो कितने दिनोंका मास होता सोचना व्यर्थ है। जिस प्रकार काम चलाने के लिये मासकी गणना करते हैं उसी प्रकार वर्षकी भी पतझड़ हुआ वसंत आया, भीषण अग्निकी ज्वालायें तपीं, मुसलाधार वृष्टि हुई, कड़ाके के जाड़े पड़े फिर पत्ते झड़ने लगे एक चक्कर पूरा हो गया। हमने समझ लिया एक वर्ष (चक्र) हो गया। यह वर्ष ऋतुओंके परिवर्तनके कारण माना था। यदि ऋतु-परिवर्तन होवे ही नहीं—सदैव अग्निज्वालायें धधकती रहें तो वर्ष की सीमा क्या होगी—स्पष्ट है। इन बातों से विदित होता है कि समय की कल्पना प्रकाशके होने और न होनेके फल स्वरूप मान ली गई है। इसका अस्तित्व पृथ्वी अथवा अन्य ग्रहों तक ही सीमित है वास्तवमें कुछ है नहीं। इसका विस्तृतकारण सहित वर्णन इस पुस्तकके दूसरे भागमें किया जायगा।

दूसरी समस्या स्थानकी है। स्थानका प्रश्न समयके प्रश्नसे भी गूढ़ है। स्थान है क्या? मैं आगरेमें हूं, कमरेमें बैठा लिख रहा हूं। क्या इसे स्थान कहा जा सकता है? मैं तो पृथ्वी पर बैठा हूं—स्थान पर नहीं, फिर स्थान क्या है? पदार्थ मात्र।

यह कथन कि कल ब्रह्माण्डकी शक्ति आजसे भी अधिक अनियन्त्रित व अव्यवस्थित हो जायगी, प्रमाणित करता है कि कलकी अपेक्षा आज अधिक नियन्त्रित है, कल आजसे भी अधिक नियन्त्रित रहा होगा। इसी भाँति पीछेकी ओर हटते चले जायँ तो सुव्यवस्थाकी मात्रा बढ़ती ही चली जायगी। एक स्थल आयेगा जहां सुव्यवस्थाकी पराकाष्ठा तथा ब्रह्माण्डका प्रारम्भ रहा होगा। जगतकी प्रसरण-शीलतासे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि जो विश्वद्वीप आज विकर्षणके चक्करमें आकर दूर भागते जा रहे हैं, एक समय रहा होगा, जब यह इतने दूर न थे—पास-पास थे—प्रकाशपिण्ड कम संख्या-में थे। इससे भी पूर्व वह समय अवश्य रहा होगा जब कि सब विश्वद्वीप भिन्न भिन्न न थे एक ही में अन्तर्हित थे। बारूदका गोला आकाशमें जाकर फूट जाता है—अगणित अग्नि स्फुलिङ्ग, शून्यमें बिखर पड़ते हैं ठीक यही दशा 'ब्रह्म-अण्ड' की थी। सारा विश्व, दूरातिदूर विचरण करनेवाला आजका बृहद् विश्व, उस समय एक साधारण अणुके भीतर निहित था। यह अणु पृथ्वीके सदृश था। जब इस अणुका विस्फोट हुआ तब इससे अगणित कण अन्तरिक्षमें दूर दूर बिखर गये—इनमेंसे प्रत्येक कण छितराता छितराता अपने जनक अणुके आकारका हो गया—समय आनेपर प्रत्येकमें विघटन व विच्छेद हुआ फिर प्रत्येकसे पूर्ववत् सहस्रों कण बिखरे आदि। यह सिद्धान्त लेमेटे-अरका है।

यह उपर्युक्त कल्पना प्रायः सबने स्वीकार की है। एक छोटा सा बीज उपयुक्त परिस्थितियां पाकर बृहत् वृक्ष बन जाता है, फिर वृक्षसे लाखों उसी प्रकारके बीज उत्पन्न हो जाते हैं—छोटा सा अण्डा बढ़कर पक्षी हो जाता है जो समय आनेपर फिर कई उसी पूर्व आकृतिके अण्डोंको जन्म देता है। एक छोटासा शुक्रबिन्दु मातृ-गर्भमें अनुकूल परिस्थितियां पाकर शिशु-रूप पा

जाता है जो आगे चलकर भीमकाय मल्ल भी हो जाता है। इसी प्रकार किसी भी जीवित पदार्थको उठाकर देखें तो पता चलेगा कि उसमें विश्व-रचनाकी कहानी छिपी है—वह भी उसी नियमका अनुसरण करता है जिसका अनुसरण आदि कालमें ब्रह्माण्डने किया था—और अब भी कर रहा है। वह नियम है सूक्ष्मसे चलकर बृहत् होना, एकसे अनेक होना और उन अनेकोंका बढ़कर उत्पादयिताके आकारका होना तथा फिर वंशानुभूत नियमानुसार सहस्रोंको जन्म देना।

तर्क द्वारा प्रमाणित करनेमें विश्व-रचनाका उपर्युक्त सिद्धान्त जितना सरल दीखता है वास्तवमें उतना सरल है नहीं। माना कि समस्त ब्रह्माण्ड प्रारम्भमें बारूदके गोलेकी भांति था—एक अणुके सदृश था और उससे सहस्रों तत्सम अणु बिखरे, पर शङ्का होती है कि वह प्रथम अणु, जिसके भीतर सब निहित थे कहांसे आया, कैसे बना, किन परिस्थितियोंको पाकर बढ़ा, और फूटा क्यों?

वर्तमान विज्ञानवेत्ता इन्हीं प्रश्नोंके अनुसन्धानमें लगे हुए हैं किन्तु मजा यह है कि धीरे धीरे विज्ञान उसी केन्द्रकी ओर अग्रसर हो रहा है कि जहांसे भारतीय मनीषी, दिव्य चक्षुवाले ऋषि यात्रा प्रारम्भ करते थे। यहां विज्ञान और दर्शन, वेदान्तादि एक दूसरेसेका आलिङ्गन करते देख पड़ते हैं। किसीने ठीक ही कहा था कि जहां पाश्चात्य दर्शन समाप्त होता है वहां प्राच्य यात्रा प्रारम्भ होती है। मैं यहां पुस्तकका कलेवर बढ़ जानेके भयसे इस विषय पर अधिक न कहूँगा—यहां पर केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इस [illegible] अनुसार विकास स्वयंसिद्ध शक्ति अविच्छिन्न सत्ता, अखण्ड विस्तृत चेतनासे हुआ। इस चेतना

> देश, काल, गति आदि किसी का प्रभाव नहीं पड़ता—यह अविरल है—सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शक यंत्र से भी नहीं देखा जा सकता—यंत्रों से [illegible] जा सकता है जो टुकड़ों में हों वे टुकड़े चाहे कितने [illegible] क्यों न हों।

किन्तु जिस सत्ताके टुकड़े ही नहीं हैं अटूट है उसे यत्रसे देखने पर नकार ही नकार दृष्टिगत होगा। बाह्य साधनों द्वारा उसे देखना दुरूह है उसे तो पुष्कल ध्यायमान व्यक्ति ही देख सकते हैं। वह 'सूक्ष्मत्वात् अविज्ञेय' है। मुझे बाल्यावस्थामें पढ़े हुए मुण्डक उपनिषद्का वचन याद आ रहा है। उस चिन्तनशील ऋषि ने एक ही श्लोक में अब तक कही जाने वाली बातों को क्या ही सुन्दरता से वर्णित किया है—ब्रह्माण्ड का तथा उसके भीतर प्रेरणा करने वाली सूक्ष्म सत्ता का वर्णन करते हुए कहता है :

बृहच्चतद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायाम्॥

अर्थात् (एक ओर) उसका दिव्य विस्तार इतना बृहत् है कि अचिन्त्य है। (दूसरी ओर) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म (रूप में) व्याप्त है। दूर से भी दूर किन्तु निकटसे भी निकट है। अपनी ही गुहामें निहित हुई उस सत्ताको हर एक देख सकता है।

अभी कुछ देर पूर्व यह प्रश्न उठा था कि प्रारम्भिक अणु जिससे आगे चल कर सारा ब्रह्माण्ड और सृष्टि प्रकट हुई, किससे उत्पन्न हुआ। भगवान् ने गीता में कहा है—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥

अर्थात् "सम्पूर्ण दृश्यमान भुवन और लोक सृष्टि-दिवसके उषःकालमें अव्यक्त से (यानी सूक्ष्म सत्ता से क्रमशः) प्रकट हुये और अन्त में उसी अव्यक्त नामक सत्ता में, महारात्रि के आते ही लय हो जावेंगे।"

ठीक इसी निर्णय पर वैज्ञानिक विद्वान भी पहुँच रहे हैं। आजके जीवित विज्ञानवेत्ता जीन्स, एडिंगटन, क्राउथर (सलीवन) आदिके लेखोंमें अव्यक्त के प्रति एक दबी हुई किन्तु स्पष्ट धारा बहती मिलती है। जे० डब्ल्यू० एन० सलीवन अपनी पुस्तक 'लिमिटेशन्स आफ़ साइन्स'(अर्थात् विज्ञानकी सीमायें) में प्रलय पर कहते हैं कि विश्वक्रियाओंका कार्यक्रम समाप्त होनेके बहुत समय पहले ही मनुष्य रंगमंचसे उठ जायगा, शेष करिश्मे अविचारणीय रात्रिमें होंगे। उस समय किसी प्रकारकी चेतना इसे देखनेके लिये न होगी।

वही उपर्युक्त सज्जन सृष्टि-प्रारम्भके विषयमें कहते हैं कि यह तब और कौतूहलजनक हो जाता है जब हम सोचते हैं कि यह अद्भुत पिण्ड जल जल कर बुझ जानेके लिये शून्यमेंसे सहसा उछल पड़ा था। यह है वैज्ञानिक धारणा। जहाँ तक इसका सम्बन्ध है यह सत्य प्रतीत होता है। पर हम लोग यह विश्वास नही कर सकते कि यही पूर्ण सत्य है (इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं)। हमें तो यह विश्वास करना अच्छा लगता है कि "वस्तुतः वर्तमान विज्ञान-प्रणालीकी पहुँच सीमित है।"

जेम्स जीन्स एक और शंका खड़ी कर देते हैं। उनका कहना है हम जितनी बार आँख उठाकर नक्षत्रोंकी ओर देखते हैं वज़नमें कम होता पाते हैं—पदार्थ—ज्वलन द्वारा प्रति मिनट शक्तिके रूपमें परिवर्तित हुआ करता है, पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमें जो कुछ दिखाई पड़ रहा है वह तस्वीर का एक ही पहलू हो? क्या पता शक्ति भी परिवर्तित होकर पदार्थका रूप ग्रहण किया करती हो। यदि ठोस पदार्थ सूक्ष्मशक्तिमें पलट सकता है तो सूक्ष्मशक्ति भी स्थूल रूप ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा है तो सृजन और विनाश की अन्तहीन शृङ्खला चला ही करती है, सृष्टि और प्रलयका यमज नृत्य चल रहा है, कुछ बन रहा है और साथ ही कुछ बिगड़ रहा है!

यदि ऐसा है तो स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि किस अंतिम लक्ष्यकी ओर प्रत्येक वस्तु बढ़ती जा रही है—सत्यानाशकी ओर नहीं तो फिर किस निर्वाणकी ओर? जेम्स जीन्सका कहना है कि इस स्थानपर हम मनमानी कल्पना कर सकते हैं। सब बातों का निष्कर्ष निकालते हुए वे कहते हैं कि हमारे ज्ञानकी वर्तमान सीमा इतने ही तक है कि पदार्थ है·········पदार्थ रूपमें आनेके पूर्व वह क्या था कुछ नहीं जानते*।

हमारा ज्ञान सीमित है यह सच है पर जो कुछ है बड़ा कौतुकजनक है। हम सोलहवीं शताब्दीके ज्योतिषियोंको, अन्य ग्रहोंके जीवन-युक्त होनेके तर्कोंको पढ़कर हंस देते हैं पर सच पूछा जाय तो हमें स्वयं नहीं निश्चय हो पाया कि पृथ्वीको छोड़कर और किन किन ग्रहों या नक्षत्रोंमें जीवित प्राणी हैं। पिछले आंकड़ोंसे हमने देखा था कि पृथ्वीकी सत्ता और आयु अन्य नक्षत्रोंके समक्ष नहीं के तुल्य है, यदि कहीं मानव-जीवन-विकास हो गया होगा तो उन्होंने आज तक हम लोगोंसे कई गुना अधिक ज्ञान उपार्जित कर लिया होगा। कुछ विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है (जैसा कि हम आगे चलकर तीसरे अध्यायमें देखेंगे) कि जीवन सहस्रों परिस्थितियोंपर आश्रित है इन सबका किसी ग्रहमें उसी मात्रामें पाया जाना, जिस मात्रामें पृथ्वीमें पाई जाती है शक्य नहीं। जो हो—अभी यह विषय विवादास्पद है कुछ निश्चित नहीं।

दूरकी बात जाने दीजिये पृथ्वीके पड़ोसमें ही दस बारह मीलसे अधिक ऊंचाई पर जीवन टिकना असम्भव है। सन् '३८ तककी ऊंची से ऊंची उड़ान तेरह मील रही थी वह भी कई हानियाँ उठाकर। मानव-रहित बैलून जिसमें तापक्रम, दबाव, दूरी आदि नापनेवाले यन्त्र लगे थे २६ मीलसे ऊंचे नहीं

* इवोल्यूशन इन दी लाइट आफ़ माडर्न नौलेज (प्रथम अध्याय, पृष्ठ २०)

यदि ऐसा है तो स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि किस अंतिम लक्ष्यकी ओर प्रत्येक वस्तु बढ़ती जा रही है—सत्यानाशकी ओर नहीं तो फिर किस निर्वाणकी ओर? जेम्स जीन्सका कहना है कि इस स्थानपर हम मनमानी कल्पना कर सकते हैं। सब बातों का निष्कर्ष निकालते हुए वे कहते हैं कि हमारे ज्ञानकी वर्तमान सीमा इतने ही तक है कि पदार्थ है·········पदार्थ रूपमें आनेके पूर्व वह क्या था कुछ नहीं जानते*।

हमारा ज्ञान सीमित है यह सच है पर जो कुछ है बड़ा कौतूहलजनक है। हम सोलहवीं शताब्दीके ज्योतिषियोंको, अन्य ग्रहोंके जीवन-युक्त होनेके तर्कोंको पढ़कर हंस देते हैं पर सच पूछा जाय तो हमें स्वयं नहीं निश्चय हो पाया कि पृथ्वीको छोड़कर और किन किन ग्रहों या नक्षत्रोंमें जीवित प्राणी हैं। पिछले आंकड़ोंमें हमने देखा था कि पृथ्वीकी सत्ता और आयु अन्य नक्षत्रोंके समक्ष नहीं के तुल्य है, यदि कहीं मानव-जीवन-विकास हो गया होगा तो उन्होंने आज तक हम लोगोंसे कई गुना अधिक ज्ञान उपार्जित कर लिया होगा। कुछ विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है (जैसा कि हम आगे चलकर तीसरे अध्यायमें देखेंगे) कि जीवन सहस्रों परिस्थितियोंपर आश्रित है इन सबका किसी ग्रहमें उसी मात्रामें पाया जाना, जिस मात्रामें पृथ्वीमें पाई जाती है सम्भव नहीं। जो हो—अभी यह विषय विवादास्पद है कुछ निश्चित नहीं।

दूसरी बात जाने दीजिये पृथ्वीके पड़ोसमें ही दस बारह मीलसे अधिक ऊंचाई पर जीवन टिकना असम्भव है। सन् ३८ तककी ऊंची से ऊंची उड़ान तेरह मील रही थी वह भी कई हानियां उठाकर। मानव-रहित बैलून जिसमें तापक्रम, दबाव, हवा आदि नापनेवाले यन्त्र लगे थे २६ मीलसे ऊंचे नहीं

* उद्धरणस्वरूप इन दो सारह मास मार्क्स गौसेव (प्रथम अध्याय, पृष्ठ २०) है

जा सके हैं। पृथ्वीपर पाया अनेकानेक कोई प्राणी पांच मीलकी ऊंचाई पर सांस नहीं ले सकता। छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु आदि जो कि वायुयानमें रखकर ऊपर ले जाये गये चार मीलसे पहले ही अचेत हो गये। चतुष्पदोंकी दुनिया तो इससे भी पूर्व समाप्त हो जाती है।

यह तो हुआ पृथ्वीके बाहरका हाल अब भीतरकी ओर मुड़ जायं। पृथ्वीका पूर्ण व्यास ८००० मील है—अभ्यन्तर केन्द्रभाग लौहतत्व का पिण्ड है, यहां जीवन सम्भव ही नहीं। मध्य भाग अग्निशिला का है, वहां भी आशा है। रहा ऊपरी भाग सतहके निकटका तीस मील गहरा पुर्त। जिस भागमें हम रहते हैं वहांसे तीनको गहराई तक मेढक सर्प केचुआको मट्टीमें दवे रहनेपर भी हवा व प्रकाश खींच लेनेकी शक्ति रहती है, आगे नहीं। गहरे से गहरे समुद्रमें पांच मीलतक सूर्यप्रकाश पहुँच सकता है। यहीं तक बड़ी मछली, मगर, घड़ियाल, केकड़ा, कच्छप आदि जन्तु भोजन, वायु, एवं प्रकाश पा सकते हैं। इससे आगे जहां पर सदा अन्धकार एवं शीत रहता है, कोई जन्तु नहीं जी सकता। इस प्रकार मोटे तौरसे देखा जाय तो पता चलता है जीवन-विस्तार तेरह मील ऊपर और पांच मील भीतर कुल अट्ठारह मील तक है। १४००,०००,००० प्रकाशवर्षके व्यासवाले ब्रह्माण्डमें हमें केवल अठ्ठारह मीलतक पाये जानेवाले जीवनका ठीक-ठीक ज्ञान है।

किन्तु इससे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। हममेंसे नब्बे प्रतिशत साथी तो ऐसे हैं जिन्हें इतना भी विदित नहीं। माना कि हमारा ज्ञान सीमित , प्राणिविस्तार नहीं के तुल्य है पर जितना भी है अद्वितीय है, अद्भुत है आश्चर्यमें डाल देनेवाला है।

३

भू-रचना

हमने पिछले अध्यायमें देखा था कि मनुष्यने सूर्य, चन्द्र, बुध, शनि इत्यादि के विषयमें विचार करना बहुत पहले आरम्भ कर दिया था किन्तु भू-रचना पर दृष्टि न गई थी। किसीके मनमें आशंका ही न उठती थी कि पृथ्वी वर्तमान रूपमें कैसे पहुंची। सम्भवतः शंका न उठनेका एक कारण यह भी था कि उन्होंने मान रखा था कि सृष्टि अनादि है अर्थात् जिस रूपमें हम देख रहे हैं उसी रूपमें सदैव रही है और रहेगी। अन्त और आरम्भ होता ही नहीं। किन्तु जब मनुष्यने सब पदार्थोंकी नश्वरता देखी और विज्ञान द्वारा पदार्थविश्लेषणकी शक्ति पाई तब समझा कि सबकी भांति पृथ्वीका भी आदि और जन्म हुआ था। भूगर्भशास्त्रियोंने धरातलके भीतर दबी पड़ी रहनेवाली चट्टानोंको पढ़ा उनमें प्रकृतिने स्वयं अपनी जन्मकथा टूटे अक्षरोंमें खोद रखी थी उन्हींके आधारपर हमें पृथ्वीके जन्मकी कथा विदित हो गयी।

प्रायः सब धर्मोंमें इस प्रकारके प्रश्नों पर चर्चा मिलती है कि पृथ्वी किसने बनाई, ऊंचे ऊंचे पर्वत व समुद्र किसने बनाये आदि। बहुधा इनके उत्तर देने-का काम धर्मगुरुओंके हाथ रहता रहा। सबका सीधा सादा उत्तर होता था 'ईश्वरने बनाये'। किस क्रमसे बनाये सो पता नहीं। इन सबका उसीके द्वारा बनाये जानेका एक और कारण था—उसकी महत्ता बढ़ाना, सर्व शक्तिमान होनेका प्रमाण दे सकना आदि। यह दशा पिछली शताब्दी तक रही। किन्तु जबसे वैज्ञानिक अनुसन्धान व पार्थिव शोधने ज़ोर पकड़ा तबसे अटकल पच्चू गप्पोंका लड़ाया जाना बन्द हो गया।

इस दिशामें वैज्ञानिक खोज करनेवाला सर्व प्रथम दार्शनिक लाप्लास हुआ। यह फ्रान्सीसी था—कोई डेढ़सौ वर्ष पहले। यही वह व्यक्ति था जिसने सर्व प्रथम—ज्योतिष इतिहासमें सर्व प्रथम—घोषणा की कि पृथ्वी, मङ्गल, शनि इत्यादि ग्रह आरम्भमें भिन्न न थे अपितु सूर्यमें समाये हुये थे। इसके पहले इन सबोंको स्वतन्त्र, परस्पर असम्बन्धित मानते थे। हिन्दू ज्योतिषमें यह त्रुटि अब भी दीखती है, चन्द्रमाको ग्रह माना जाता है यद्यपि विज्ञान द्वारा उपग्रह प्रमाणित हुआ है। स्वयं सूर्यको मंगल, शनि आदि की भांति ग्रह माना गया है जिससे विदित होता है सूर्य तथा अन्य ग्रहोंके बीच पिता-पुत्रका सम्बन्ध ज्ञात था। जो हो, आजसे लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले मनुष्यने जाना कि हमारी पृथ्वीका जन्म सूर्यसे हुआ। मानव शंकाशील तो था ही पूछना प्रारम्भ कर दिया, क्यों हुआ, किस शक्तिने अथवा किस घटनाने सूर्यको खण्ड देनेके लिये विवश किया। इसी शंकाने भू-जन्मकी उलझी हुई गुत्थी, इसका उत्तर देनेके लिये, कुछ ही वर्ष हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयके विद्वान् सर राबर्ट बॉल आगे आये। पहलेसे चली आनेवाली 'टाइडल थ्योरी' या ज्वार-भाटा-सिद्धान्त यहां भी प्रयुक्त किया और बताया कि अनन्तकाल

पूर्व जब पृथ्वी मंगल आदि एक भी ग्रह उत्पन्न न हुआ था हमारा सूर्य शून्यमें चक्कर करता था। उस समय वह सन्तानहीन था। अकस्मात् कोई अन्य महासूर्य जो कि हमारे सूर्यसे कई गुना बड़ा था चक्कर होकर इसके पाससे निकला। यह महासूर्य हमारे सूर्यसे कई गुना अधिक शक्तिशाली था—अतः हमारे सूर्यमें ज्वार-भाटे उत्पन्न कर दिये जिस प्रकार कि सूर्य और चन्द्रमा मिलकर हमारे समुद्रमें उत्पन्न किया करते हैं। हमारे सूर्यका बहुत बड़ा भाग महासूर्यकी ओर खिंचने लगा। जब महासूर्य बिल्कुल निकट आ गया तो वह इतना खिंचा कि सूर्यसे पृथक् हो गया। महासूर्य अपने मार्ग चला गया; किन्तु यहां एकसे दो कर गया। यही घटना थी जिसने ग्रहोंको जन्म दिया। यदि महासूर्य समीपसे होकर न निकला होता तो आज भी हमारा सूर्य पहलेकी भांति अकेला चक्कर करता। टैलिस्कोप द्वारा देखनेसे पता चलता है कि आकाशमें कई सूर्य ऐसे हैं जिनके एक भी ग्रह नहीं। हमारा सूर्य भी उन्हींकी भांति हुआ होता। जिन सूर्योंके ग्रह हैं उनके भी इसी प्रकारकी घटना द्वारा होते देखे गये हैं।

अलग हो जानेवाला, सिगारनुमा भाग, ज्योतिर्नियमानुसार, अपने पिता सूर्यकी परिक्रमा करने लगा। निरन्तर गतिपूर्ण होनेके कारण इसके कई खण्ड हो गये सब खण्ड एक से न थे। कुछ बड़े थे कुछ छोटे। बड़े खण्डोंने छोटे खण्डोंको अपनी ओर खींचकर निजमें मिलाना प्रारम्भ कर दिया। इन बड़े खण्डोंमें अन्यांश जितनी अधिक मात्रामें सम्मिलित होते गये, आकार बढ़ता गया। आकार बढ़नेके साथ ही साथ उन खण्डोंकी आकर्षणशक्ति बढ़ती गई—अन्तमें एक वह समय आया जब कि बड़े बड़े दस स्पष्ट ग्रहपिण्ड शेष रह गये अन्य सब इन्हींमें अन्तर्हित हो गये। इन्होंने पड़ोसी निर्बल खण्डोंको अपनेमें समाविष्ट कर लिया। ऐसा होना केवल इसी कारण सम्भव हो सका

है, जब गुरुत्व शक्ति न रहेगी तब वायुमण्डल भी अन्तरिक्षमें विलीन हो जायगा। अन्य ग्रहोंके भी वायुमण्डल हैं। मङ्गल ग्रहका वायुमण्डल उन सबमें अधिक स्पष्ट, शुद्ध, व पारदर्शी है। इसीसे अनुमान लगाया जाता है कि वायुमण्डलमें आक्सीजन उडेल देनेवाले सदस्यों अर्थात् वृक्षोंका प्रादुर्भाव वहां हो चुका है।

पृथ्वीका मध्य भाग कोई ५००० वर्षतक तरल होता रहा। इसी बीच उस तरल पदार्थमें कई रासायनिक क्रियायें हो गईं। अब यह केवल पतला ही न था वरन् कुछ कुछ गाढ़ा, रक्तोष्ण लावाके रूपमें था। गर्म दूधके ऊपर जमनेवाली मलाईकी भांति इस उष्ण चाशनीकी ऊपरी सतहपर भी पपड़ी जमने जा रही थी कि चन्द्रमाका जन्म हुआ।

चन्द्रमाकी जन्म-समस्या हल करनेके लिये वैज्ञानिकोंने बड़े-बड़े मनोरञ्जक सिद्धान्त बताये हैं। ग्रन्थ-विस्तार के भयसे हम लोग केवल कुछ एकपर दृष्टिपात करेंगे।

जी० डार्विनका कहना है कि जब पृथ्वी गैस-तरल अवस्थामें थी तब आजकी पृथ्वीसे कई गुना बड़ी थी। प्रथम तो इसलिये कि उसमें चन्द्रमा सम्मिलित था दूसरे इसलिये कि छितराई हुई अवस्था में थी—संकुचित और ठोस जमी हुई अवस्थामें नहीं। उस समय सूर्यसे भी इतनी दूर न थी जितनी आज है। तब केवल चार घण्टेमें ही कोलीका चक्कर लगाती थी जब कि आजकल चौबीस घण्टोंमें। यानी उस समय दो घण्टेकी रात थी और दो घण्टेका दिन। तात्पर्य यह कि घूमनेकी चाल अत्यन्त तीव्र थी। आजकल सूर्यका चलना विदित नहीं हो पाता, उस समय सूर्य दौड़ता हुआ स्पष्ट दीखता होगा। अभी चन्द्रमाका जन्म न हुआ था।

इधर पृथ्वीका केन्द्रीय मध्य ठोस भाग तरल होनेमें लगा था उधर सूर्यकी प्रचण्ड "आकर्षण-खैंच" पृथ्वीमें ज्वार-भाटे उत्पन्न कर रही थी। भूमध्य

बाहर, चारों ओर अशान्ति थी। सूर्यकी "आकर्षक-खेंच" और भी नाकमें दम किये थी, उथल पुथल मचा रही थी, ऊपरी पपड़ी हर घंटे सामुद्रिक नौकाकी भांति डगमग डगमग होती। जिस स्थानपर पपड़ी दुर्बल होती नीचेका रक्तोष्ण लावा पिचकारी चलाता हुआ ऊपर निकल आता। ज्वालामुखी स्रोतसे निकली हुई यह पिचकारी सुदूर आकाशतक सरसराती चली जाती और गन्धक हाइड्रोजनादि निजी सम्पत्तिको वायुमण्डलमें बिखेर देती। जो गैसका वायुमण्डल गरीको घेरे रहनेवाले जटाओंकी भांति पृथ्वीको घेरे था उसमें जहां अन्य पदार्थ थे तहां एक पदार्थ आक्सीजन भी था। जैसे ही ज्वालामुखीसे निकलनेवाले लावाकी हाइड्रोजनका वातावरणको आक्सीजनसे उपयुक्त मात्रा (एक परिमाणु आक्सीजन दो परिमाणु हाइड्रोजन) का मेल हुआ कि आकाशमें—पृथ्वीपर प्रथम बार जल उत्पन्न हो गया। यह जल निरन्तर धरातलपर गिरता रहा किन्तु गर्मीकी अधिकताके कारण नीचेतक न आ पाता, बीच हीमें सूख जाता था। यह कार्य वर्षों होता रहा। धीरे धीरे जब उष्णता कम हुई तब पानीकी बूंदें नीचेतक आने लगीं। अब क्या था मूसलाधार वर्षा तक होने लगी। अटूट गतिसे पानी बरसा करता। कुछ ही घंटोंमें सौ-सौ, दो-दो सौ इंच पानी बरस जाता। इस प्रकारकी वर्षा अब कहीं नहीं होती। वह पानी इतना शीतल न था जितना कि आजकल बरसा करता है—अपितु 'बारिद तप्त तेल जनु बरसा' वाली कहावत थी।

यह वर्षा—सृष्टिकालीन वर्षा सामुद्रिक बाष्पके कारण न थी अपितु रासायनिक गैसों हाइड्रोजन और आक्सीजनके आनुपातिक मेलसे थी। अतः अचानक एकाएक प्रचण्ड धाराओंके रूपमें पृथ्वीपर गिरा करती।

कहा जा चुका है कि कई घटनायें एक साथ हो रही थीं। ऊपरसे घन घोर वर्षा हो रही थी, नीचे गीला धरा-पृष्ठ जमनेकी इच्छा कर रहा था

तत्कालीन गीली चट्टानोंपर गिरनेवाले वृष्टि-धार चिन्ह आज भी ज्योंके त्यों अंकित पाये गये हैं। अमेरिकामें कई चट्टानें पृथ्वीके, सबसे नीचे तहमें पाई गई हैं जिनमें आदि कालीन वर्षाके पदाङ्क स्पष्ट प्रतीत होते हैं। आजकलकी भांति उस समय पृथ्वीपर हरे घासके मैदान श्याम धान्यकी चादर न थी और न कोई जीव-जन्तु ही थे। उस समय तो केवल विंध्य पर्वत सदृश कड़ी ऊंची चट्टानें या गहरे खड्ड—बस इससे अधिक कुछ नहीं—मट्टी रेत आदि भी कुछ न थे। चट्टानोंपर जलधारायें प्रचण्ड वेगसे चारों ओर दौड़ा करतीं, जिधर ढालू पातीं ढल जातीं। नदी, सरोवर, झील, पोखर, ताल लहराने लगे। कई नदियां मिल कर गहरे निर्जल खड्डोंकी ओर दौड़ जाने लगीं। पृथ्वीके जिस मार्गसे चन्द्र-निर्माणके लिये चन्दा दिया गया था, मटमैला, तप्त जल उसी भागका, भाव पूरा करने लगा। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि समुद्रोंमें पाई जानेवाली जलराशि केवल आकाशकी ही देन नहीं है अपितु तत्कालीन जमनेवाली चट्टानोंकी भी। उनका मत है कि तरल धराखण्डका जो भाग जमता गया प्रस्तर होता गया, जो तरल ही बना रहा वह जल-रूपमें प्रयुक्त हो गया जिस प्रकार कि दूध जम जानेपर जमा हुआ भाग अलग हो जाता है और विना जमा भाग जलके रूपमें। कुछ भी हो इन दो साधनों—आकाशीय गैस तथा तरल-धराखण्डके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं दीखता जिससे समुद्रोंमें इतना जल पहुंचा होगा।

तरल भागको घेरे रहनेवाले गैस-वितानसे जितना अधिक पानी बनकर नीचे बरसता गया गैसावरण उतना ही विदीर्ण हो फटता गया। होते होते एक समय आया जब कि गैस आवरणका नामनिशान न रहा। उस धुंधले कुहरेके स्थानपर सूक्ष्म स्वच्छ पारदर्शक वायुसमुद्र लहराने लगा। यही वायुमण्डल भावी जीवन-यात्राकी पृष्ठभूमि थी। यद्यपि अभी यह विष-रहित

न था तथापि पहले जैसा धुंधला न था इतना स्पष्ट था कि इस पारसे उस पारकी वस्तुयें दीख पड़ सकती थीं।

सूर्यरश्मियां नीचे धरातल तक उतर आनेमें सफल हुईं। अभी तक जब कि गैसका अवगुण्ठन छाया था सूर्यको धरामुख दृष्टिगोचर न होता था। किन्तु अब मार्गमें कोई रुकावट न थी। अब न जाने कितने वर्षों-पश्चात् पृथ्वी अण्डा फोड़कर निकलनेवाले पक्षीकी भांति पर्देसे बाहर आयी और अपने पिता सूर्यके दर्शन कर सकी। अबसे वास्तविक दिन रात्रि प्रारम्भ हुए। इसके पूर्व दिन किस प्रकारका हुआ करता था पाठक स्वयं कल्पना कर लें।

यह तो हुआ पृथ्वीके बाह्य जगतके वातावरणादिका दृश्य। अब पृथ्वीके अन्तरङ्गमें प्रवेश करके देखा जाय। जिस समय बाह्य धरातलकी पपड़ी जम चली थी उसी समय अभ्यन्तरकी ओर भी Solidification—अर्थात् सघनता प्रारम्भ हो गई थी। ऊपरवाला भाग जम जानेके कारण भारी हो गया। भारी होनेसे नीचेकी ओर धंसका। पपड़ीके डूबते ही नीचे खौलनेवाले लावासागरकी विशाल धाराएं ऊपर उठ आईं और पपड़ीकी पीठपर छितराने लगीं। बाहरका तापक्रम भीतरी तापक्रमसे कम था—बाहर शीतलता अधिक थी। अतः पपड़ीपर छितरानेवाली गीली धारानोंसे शीतल होकर जमने लगी। इस प्रकार चट्टानोंके दो पर्त जम गये। दो पर्त हो जानेपर पपड़ीका बोझ और भी बढ़ा—अबकी बार दोनों स्तर नीचेको धंसके। पहलेकी भांति फिर नीचेका तरल उष्ण लावा ऊपर उठा, ऊपर चट्टानपर छितराया, शीतल हुआ और जमा। इस प्रकार चट्टानोंके ऊपर चट्टानें जमती गयीं। इन्हें'भूगर्भ-प्रस्तर-शृङ्खला' कहते हैं। इन्हीं चट्टानोंकी सहायतासे विद्वानोंने पृथ्वीकी आयु, अवस्था, विकास क्रमादि अङ्कित कर लिये। किस प्रकार किये यह कुछ देर पश्चात् सोचेंगे।

इन प्रस्तरखण्डोंमें बड़ी आश्चर्यजनक क्रियायें हो रही थीं। इधर ऊपरी सतहपर चट्टानें बनती जा रही थीं, उधर सबसे नीचे दब जानेवाली चट्टान दबाव तथा आन्तरिक दाहके कारण पिघल रही थी। बीचवाली चट्टानें भी ऊपरी दबाव और नीचेके तापक्रमसे कायाकल्प कर रही थीं। तापकी मात्रा भिन्न होनेके कारण धातुएं भी भिन्न प्रकारकी बनीं। यह भी नियम नहीं है कि बनते समय जिस धातुकी बनी थीं आज तक उसी धातुकी हैं। अटूट गतिसे बनते रहनेके कारण धातु-परिवर्तन भी होता चला आया है। पृथ्वीके जिस भागपर हम लोग बैठे हुए हैं यदि उसे नीचे तक खोदा जाय तो कई प्रकारकी धातुओंकी चट्टानें मिलेंगी। कुछ पर्त खड़िया मिट्टीके होंगे तो कुछ कड़ी मिट्टीके, कुछ भूरे-भूरे श्वेत सङ्गमरमरकी होंगी तो कुछ तेलिया पत्थरकी आदि। कोई स्थान ऐसा न होगा जहां इस प्रकारकी अथवा किसी अन्य प्रकारकी चट्टानोंके एकसे अधिक पर्त न पाये जायं। इन सब पर्तोंकी रचना उपर्युक्त रीतिसे हुई थी। मैदानी प्रान्तोंमें भूमिको खोदा जाय तो कुछ दूर तक भिन्न-भिन्न प्रकारकी मिट्टियों (श्याम, पीत, श्वेत, धुरुवे) की तहें मिलेंगी। इनकी रचना उपर्युक्त प्रणालीसे न हुई। इनकी सृष्टिका श्रेय पर्वतोंको पीसकर धरापृष्ठपर चूर्णिताङ्ग राशि वितरित करनेवाली जलधाराओंकी है। जलवृष्टिने यह काम असंख्य वर्षोंमें कर पाया है। जे० डबल्यू० एन० सलीवनका अनुमान है कि प्रति ४००० वर्ष पीछे एक फुट तह जमनेका औसत देखा गया है। इससे सैकड़ों व हजारों फीट गहरे पर्तोंका रचना काल आंका जा सकता है। यह काम—पर्वतोंको पीसकर धरातलपर ले आनेका काम, जलवृष्टिने ही किया है। जलने पर्वतोंकी ऊंचाई इतनी छोटी कर दी है कि प्रारम्भिक ऊंचाईका पता लगाना मनुष्यके लिये कठिन सा हो गया है। इन उच्च नुकीले शैल-शृङ्गोंकी रचनाविधि भूगर्भ-प्रस्तर-शृङ्खलाके अनुसार नहीं हुई।

इन पर्वतोंकी उत्पत्ति भिन्न विधिसे हुई। पिछली पंक्तियोंमें हमने एक चट्टानके ऊपर दूसरी चट्टान जमनेवाली परम्परा देखी थी। यह परम्परा शनैः शनैः शिथिल होती गई। लगभग १०,००० वर्ष बाद यह क्रिया समाप्त-सी हो गई। कारण कि इतने समयमें चट्टानोंके कई पुर्त लग चुके थे। उनका नीचे धंसकना बन्द हो गया था। नीचेवाला तरल पदार्थ भी उन्हें पार करके ऊपर न आ सकता था। परन्तु स्मरण रहे यह आठ-दस मंजिलवाला गुम्मट स्तम्भहीन था, आधारहीन था। शेषनागके फनपर अथवा कच्छप भगवानकी पीठपर न टिका था—तरल सागरपर रखा था। अपने ही बलपर सधे रहनेवाले महराबकी भांति अधड़पर सधा था। आखिर बेचारा कहां तक सधा रहता। एक समय आया जब कि कुड़कन, सिमटन, संकोच, झुर्रियां पड़ना आदि प्रारम्भ हो गया। जो भाग निर्बल या टूटा, नीचेसे पिचकारीकी धार आकाश तक जा जाकर भूमिपर गिरने लगी, लावा राशिके पीरेमिड पर पीरेमिड बनने लगे। कीचड़के गगनचुम्बी ढेरोंका जमघट लग चला। यही नुकीली राशियां पर्वत हुईं—हिमालय, पिरेनीज्-इन्डीज् शृङ्खलाएं इसी प्रकारकी घटनाओंके परिणाम स्वरूप बने। इतने विशाल विस्तृतमालाको जन्म देनेवाले ज्वाला-मुखियोंने कितने वर्षों तक लावा उगला होगा, कहा नहीं जा-सकता। उस युगका दृश्य कितना भीषण रहा होगा—प्रगाढ़ सघन, कृष्ण, कीचड़से आच्छादित आकाश और धरा पृष्ठपर रक्तोष्ण लावाकी अटूट मूसलाधार वृष्टि। जिस समय भूमिखण्ड और आकाश मिलकर पिचकारीसे होली खेल रहे थे उसी समय समुद्र और चन्द्रमा मिलकर जलराशि रूपी गेंदसे फुटबाल खेल रहे थे। अन्तर केवल इतना था कि भूमि और आकाशके बीच कीचड़का आवागमन था और समुद्र व चन्द्रमाके बीच विशाल ऊर्मिजाल का। इन उत्ताल्तरङ्गित ऊर्मिमालाओंको ज्वार-भाटा कहा जा सकता है। किन्तु आजकल समुद्रमें

उठनेवाले ज्वार-भाटोंकी भांति ये शान्तिप्रेमी न थे। वे अत्यन्त चञ्चल तथा गगनचुम्बी थे। प्रोफेसर हेरेल्ड जैफरीके मतानुसार आजके ज्वार-भाटोंसे १५००० गुने ऊंचे उठते थे। आजके जल-उत्थानकी ऊंचाई लहरोंके अतिरिक्त ३/४ फीट ऊंची है जब कि उस समय २॥ मील ऊंची होती थी—कितना भयावह दृश्य रहता होगा। ढाई मील ऊंची जलराशिका उठने और गिरनेका भीषण रव दिग्दिगान्तरोंमें प्रध्वनित हुआ करता। इन ऊंचे-ऊंचे ज्वार-भाटोंके उठनेका कारण था कि चन्द्रमा अत्यन्त समीप था। आज चन्द्रमाकी दूरी २४०,००० मील है उस समय केवल ९६० मील थी। पृथ्वी और चन्द्रमा दोनों ही बड़ी क्षिप्र गतिसे घूम रहे थे। पृथ्वीके विषयमें कहा जा चुका है कि चार घण्टेमें घूम जाती थी—दो घण्टेका, दिन दो घण्टेकी रात। चन्द्रमाको पृथ्वीका चक्कर लगानेमें पांच घण्टे लगते थे। हर ढाई घण्टेमें पूर्णिमा व अमावस्या बारी बारीसे होते थे। चन्द्रमा पृथ्वीके अत्यन्त निकट था। अतः तृतीया, चतुर्थी, अष्टमी, और चतुर्दशी आदि होती थी या नहीं, यदि हां तो किस प्रकारकी यह कल्पना पाठक स्वयं कर लें। पूर्वसे पश्चिम तक जितना मार्ग आजकल चन्द्रमा पूरे बारह घण्टोंमें पार करता है उतना उस समय केवल दो या ढाई घण्टोंमें पार करता था, इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय एक ओरसे दूसरी ओरको भागता हुआ बड़ा सा चन्द्रमा स्पष्ट दिखता था। एक विचित्र बात और थी जो आज नहीं होती—उस समय चन्द्रमाके दोनों पहलू दीखते थे जब कि आजकल सदा एक ही भाग दिखलाई देता है। हमें अब सिक्केका एक ही पहलू देखनेको मिलता है; कारण यह कि चन्द्रमा अपनी धुरीपर नहीं घूमता। केवल पृथ्वीकी प्रदक्षिणा मात्र करता है। उस समय चन्द्रमामें आकर्षणशक्ति अधिक थी अतः अपनी कीलीपर भी था। जिस समय अपनी कीलीपर घूमता था उस समय आकाशसे होकर

निकलनेपर बारी बारीसे दोनों पहलू दिखाता जाता था। इस लुढ़कते-पुढ़कते बृहत चन्द्रका द्रुतगतिसे भागना कितना चित्ताकर्षक रहता होगा, किन्तु खेद है कि इसे देखनेके लिये हममें से कोई उत्पन्न न हो पाया था। और तो और पशु-पक्षी, वृक्षादि भी न थे।

क्या ही आँखमिचौनी हुआ करती। चन्द्रमा तो पृथ्वीके समीपसे होकर परिक्रमा किया करता ही था, ढाई मील ऊंची लहरें उसे छूनेके लिये दौड़ा करतीं—समुद्रोंका सारा पानी चन्द्रमाकी ओर खिंच जाता—दूसरी ओरका समुद्रतल जलशून्य हो जाता—पृथ्वी व चन्द्रमाके बीच लम्बा बेलन फैल जाता। इसकी गति भी अत्यन्त तीव्र थी—५००० मील प्रति घंटा। प्रत्येक वस्तुमें गति थी, कम्प था—पृथ्वीमें उथल, पुथल, चन्द्रमामें क्रान्ति, समस्त पर्वतोंमें कम्प, जिधर देखो उधर कम्प था।

समुद्रमंथनके इस युगमें प्रायद्वीपोंकी रचना हुई और चारों ओर रुद्रका ताण्डवनृत्य होता रहा। होना स्वाभाविक ही था। सद्यःनिर्मित शैलखण्ड तूफानी लहरोंमें डगमगानेवाली नौकाकी भांति दोलित हो रहा था। प्रायद्वीपों व समुद्रोंका बटवारा हो रहा था, चन्द्रमा और सूर्य ढाई मील लम्बी जलरज्जु की मथानी पकड़कर समुद्र मथ रहे थे। चट्टानों, पर्वतों, प्रायद्वीपों आदि रत्नखण्डोंका नवनीत ऊपर उठता आ रहा था।

किन्तु यह तूफानी दृश्य सदैव ही न बना रहा। शनैः २ इसकी भी तीव्रता कम हुई। कितने कम की? इसे समझनेके लिये कल्पना कीजिये किसी ऐसे प्रदेशकी जहां बारहो मास तीव्र वायुवेग प्रवाहित होता रहता है, दो हल्के चक्र इसके अन्दर घूम रहे हैं। एक चक्र बड़ा है दूसरा छोटा। इन दोनोंके ऊपर एक चौड़ी पट्टी लपेट दी गई है। यदि पट्टी न लपेटी जाती तो दोनों चक्र इसके साथ साथ स्वतंत्र गतिसे घूमते रहते। पट्टी बंध

जानेसे उनकी स्वतंत्रता जाती रही। उसकी गति अवरुद्ध हो गई तथा पहले की भांति स्वतंत्रगामी न रह सकी। चन्द्रमा व पृथ्वीवाले गोलोंकी दशा भी ज्वार-भाटेकी पट्टी द्वारा नहीं हो गई। दोनोंकी गतिमें रुकावट आती गई। यह गति-अवरोध अत्यन्त सूक्ष्म तथा मन्द था पृथ्वी स्वच्छन्दतासे न घूम सकती थी—पानीकी ढाई मील ऊंची कगार उसे पीछेको खींचती, गति वेगमें रुकावट पड़ता। पृथ्वीके घूमनेकी गति रुकनेका अर्थ हुआ "दिनकी लम्बाई बढ़ते जाना।" यह बढ़ना लगभग अज्ञात-सा था। प्रति १२००० वर्षमें दिनकी लम्बाई एक सेकेण्ड बढ़ती। इसी गतिसे बढ़ते-बढ़ते चौबीस घंटेका दिन रात होने लगा है। कहां पहले चार घंटेका होता था। जैसे ही जैसे समय बीतता गया गति मन्द होनेकी मात्रा बढ़ती गई। दिनमान बढ़नेकी मात्रा भी बढ़ती गई।

यह काम ज्वार-भाटेने किया। उसने दिनकी लम्बाई तो बढ़ाई ही साथ ही साथ पृथ्वीको चन्द्रमासे दूर भी किया प्रारम्भमें चन्द्रमा समीप था—ज्वार भाटेके कारण दोनों एक दूसरेसे दूर होते गये। वैज्ञानिकोंका कहना है कि भविष्यमें भी यह ग्रह एक दूसरेसे दूर होते चले जायेंगे—यह क्रिया अगणित वर्षोंतक चालू रहेगी, तबतक न रुकेगी जबतक पृथ्वीका अपनी कीली पर घूमनेवाला समय और चन्द्रमाके परिक्रमा लगानेका बराबर बराबर न होने लगेगा उस समय पृथ्वीकी चाल अत्यन्त मन्द हो जायगी दिनकी लम्बाई भी बहुत हो जायगी। अनुमान है कि चौबीस घण्टेका दिन न होकर ४७ दिनका एक दिन हुआ करेगा। तात्पर्य यह कि सूर्य आज जितने मार्गको १२ घण्टोंमें तय करता प्रतीत होता है उसे २५॥ दिनोंमें (१ दिन=२४ घण्टे) तय करता प्रतीत हुआ करेगा। आगे चलकर एक समय वह भी आयगा जब पृथ्वीका अपनी धुरी पर घूमना सर्वथा रुक जायगा। जो भाग सूर्यके

समय रह जायेगा वही सदैव उजेलेमें रहा करेगा, शेषभाग अंधेरेमें। पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति भी वह न रहेगी जो आज है अतः वायुमण्डलको रोके रखना असम्भव हो जायगा—वह अनन्तमें विलीन हो जायगा। वायुके हवा होते ही जल, वनस्पति, जीव आदि सब स्वतः लुप्त होते जायेंगे, ठीक वही दशा हो जायगी जो आज चन्द्रमाकी है। किन्तु घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं। ऐसा होनेमें अभी न जाने कितने मन्वन्तर लगेंगे। तब तक मनुष्यकी वैज्ञानिक शक्ति न जाने कितनी बढ़ जायगी। वह शायद पड़ोसी ग्रह मंगलमें उड़ जायगा—वृहस्पतिमें भी तब तक जीवनके लिये उपयोगी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायंगी। उड़नेमें सफलताके लक्षण अभीसे दिखलाई दे रहे हैं। पचीस वर्षकी नन्हीं-सी आयुमें ही इस कलाने आशातीत गुल खिला दिये हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि भू-रचनाके समय चारों ओर चन्द्रावृद्ध की भाँति एक साथ कई क्रियायें हो रही थीं। जब पृथ्वी गैसरूपसे तरलावस्थामें आ रही थी, तरल पदार्थ शीतल हो रहा था, इधर पपड़ी जमकर कड़ी होने को थी, चन्द्रमाका जन्म हुआ ही था कि उधर जलवृष्टि—महान् जलवृष्टि होने लगी—भीषण धारायें पूर्व निर्मित खड्डोंमें जलराशि उड़ेलने लगीं। इन समुद्र-निहित जलराशियों ने कई परिवर्तन उपस्थित किये जो देखे जा चुके हैं।

पानी बनना इसलिये प्रारम्भ हुआ क्योंकि वायुमण्डलमें हाइड्रोजन व आक्सीजन उचित मात्रामें मिल सके। उचित मात्रामें ही मिल सकना, अधिक मात्रामें न मिलने देनेका श्रेय पृथ्वीकी परिमित आकर्षणशक्ति को है। हाइड्रोजन एक बाहरी गैस है जो भ्रमण करते करते मार्गच्युत होकर हमारे वायुमण्डलकी सीमामें हमारी पृथ्वीकी 'आकर्षण-खींच' द्वारा खिंच आती है। यह गैस जहां हितकर है वहां प्राणघातक भी है। वातावरणमें इसका आवश्यकतासे अधिक रहना ठीक न था। जानस्टन स्टोनीका अनुमान है कि यदि

जानेसे उनकी स्वतंत्रता जाती रही। उसकी गति अवरुद्ध हो गई तथा पहले की भांति स्वतंत्रभ्रामी न रह सकी। चन्द्रमा व पृथ्वीवाले गोलोंकी दशा भी ज्वार-भाटेकी पट्टी द्वारा नहीं हो गई। दोनोंकी गतिमें रुकावट आती गई। यह गति-अवरोध अत्यन्त सूक्ष्म तथा मन्द था पृथ्वी स्वच्छन्दतासे न घूम सकती थी—पानीकी ढाई मील ऊंची कगार उसे पीछेको खींचती, गति वेगमें रुकावट पड़ता। पृथ्वीके घूमनेकी गति रुकनेका अर्थ हुआ "दिनकी लम्बाई बढ़ते जाना।" यह बढ़ना लगभग अज्ञात-सा था। प्रति १२००० वर्षमें दिनकी लम्बाई एक सेकेण्ड बढ़ती। इसी गतिसे बढ़ते-बढ़ते चौबीस घंटेका दिन अब होने लगा है। कहां पहले चार घंटेका होता था। जैसे ही जैसे समय बीतता गया गति मन्द होनेकी मात्रा बढ़ती गई। दिनमान बढ़नेकी मात्रा भी बढ़ती गई।

यह गैस वर्तमान मात्रासे थोड़ी ही और अधिक रुकी होती तो आज पृथ्वी जलती होती। आगकी लपटें निकलती होतीं। हाइड्रोजनकी परिमित मात्रा में आना ही हमारे ग्रहके लिये आगामी परिवर्तनोंका मूल कारण हो गया। परिमित मात्रामें रोकना, कम या अधिक न रोकना काम था विशेष परिमाण-की गुरुत्वशक्ति का। यदि आकर्षणशक्ति उस परिमाणसे अधिक हुई होती तो अधिक हाइड्रोजन रुकी होती। गुरुत्वशक्तिका इस परिमाणमें होना पृथ्वीके वर्तमान भार वाली होनेपर आश्रित था। यदि पृथ्वीका तौल विस्तार-आकार आदि वर्तमान मात्रासे अधिक होता या बृहस्पति या शनिकी भांति हुआ होता तो इसकी भी आकर्षण शक्ति अधिक हुई होती—फल यह होता कि पृथ्वी भी अन्य ग्रहोंकी भांति जीवहीन हुई होती। इस समय न लेखक होता न लेख और न पाठक। सब घटनाकी मूलस्रोत एक घटना थी, **"पृथ्वीका विशेष मात्रा वाली उत्पन्न होना।"** विशेष मात्रावाली होनेके कारण, उसे विशेष परिमाणकी 'आकर्षण-खैंच' मिली, जिसने आवश्यक मात्रावाली हाइड्रोजनको रोका उसने अपने टर्नपर आक्सीजनसे मिलकर पानी उत्पन्न किया।

पानी तो बनता ही—कोई कारण न था कि उपर्युक्त घटनाएँ होती जातीं और अन्त में पानी निर्मित न हो पाता। यह कोई कौतूहलजनक बात न थी—कौतूहलजनक बात तो यह थी कि पानी बनना ठीक उसी समय प्रारम्भ हुआ जब **चन्द्रमा पृथ्वीसे अलग हो रहा था**—पृथ्वीमें गहरे खड्ड छोड़ रहा था। जल को टिकने के लिये धर्मशाला मिल गई। यदि समुद्र-गर्त तैयार न मिलते तो पानी सारी पृथ्वीमें मारा मारा फिरता। यह पानी इतना अधिक था कि सारी पृथ्वीको दो मीलकी गहराईमें डुबाये रखता (डाक्टर वैलेस के मतानुसार)। सोचनेकी बात है कि यदि पूरी पृथ्वी

दो मील गहरे समुद्र में डूबी होती तो जीवन समुद्र सीमा से निकलकर आगे न बढ़ पाता। न स्थली वृक्ष होते, न पशु और न पक्षी। समुद्र से भाप उठा करती और समुद्र में ही बरसा करती, पानी उतनाका उतना ही भरा रहता। सोखने या कम होने का अवसर न आता। उच्च श्रेणीके जीवोंका विकास न हो पाता। जहाँ पाठक बैठे हैं वहाँ मछली, कच्छप, घड़ियाल, अजगरादि युद्ध करते दृष्टिगोचर होते। चन्द्रमाका ऐसे समय—तरलावस्थाके अन्तमें—बनना जिससे कि समुद्र-खड्ड निर्मित हो जाय क्यों हुआ, इसका उत्तर अभी तक विज्ञानने नहीं ढूढ़ पाया है। किन्तु इतना मानना पड़ेगा कि पृथ्वी बाल बाल बच गई। यदि कहीं चन्द्रमाका निर्माण गैस अवस्थामें हो गया होता तो समुद्रोंका अस्तित्व न हो पाता, पानी सारे धरातलपर फैला-फैला फिरता आदि। सारांश यह कि पृथ्वीको जीवित ग्रह बना देने वाली मुख्य दो घटनायें—एक तो उसका निश्चित मात्रा वाली होना, दूसरा चन्द्रमाका पृथ्वीसे उस समय अलग होना कि समुद्र बन सके। इन दो घटनाओंने आगे चलकर सहस्रों घटनाओंके लिये द्वार खोल दिया। चन्द्रमाने उत्पन्न होकर केवल समुद्र ही नहीं बनाये अपितु ढाई-ढाई मील ऊंचे ज्वार-भाटे उत्पन्न किये जिनकी बदौलत प्रायद्वीप, पर्वत व समुद्र सीमाओं का बंटवारा हुआ। दिन की लम्बाई बढ़ाने में भी ज्वार-भाटोंने ही काम दिया। सम्भव है अन्य ग्रहों व नक्षत्रों में उपर्युक्त दो प्रबल घटनायें न हो सकी हों जिनके कारण आगे आने वाली घटनायें भी न घट सकी हों।

यदि हम इस धरा-निर्माण-कालमें उपस्थित होते तो आँखोंसे विचित्र दृश्य देखते, कानोंसे सुनाई देनेके लिये प्रचण्ड तूफानी जल-प्रवाहके शैल-खण्डोंसे टकराने, धाराओंका ऊंचाईसे गिर कर भैरवसंगीत-सृजन करनेके अतिरिक्त कुछ न सुनते। चारों ओर क्रियायें हो रही थीं किन्तु सब स्वतः

हो रही थीं—मशीन चालू हो गई थी उसका आगे बढ़ते जाना स्वाभाविक था। सब काम प्रकृति द्वारा स्वयं एक के पश्चात् दूसरे होते चले जा रहे थे। चारों ओर चहल-पहल थी।

यह ठीक है कि चारों ओर चहल-पहल थी—समुद्र, धरातल व अन्तरिक्ष में दौड़ धूप थी, किन्तु यह चहल-पहल निर्जीव तत्वोंकी थी। जीवित प्राणियों या वनस्पतियोंकी क्रीडा कहीं भी प्रारम्भ न हुई थी। चट्टानें सूनी थीं। समुद्र जीवनहीन था। आकाश विहगशून्य था। अगले अध्यायमें देखेंगे कि जीवन सर्वप्रथम धरातल, आकाश और समुद्रमें कहाँ प्रारम्भ हुआ। यह भी देखेंगे कि जीवित प्राणियों की उत्पत्ति किससे हुई।

४

जीवन क्या है ?

इस प्रश्न पर विचार करनेके पूर्व कि जीवन सर्वप्रथम कहां प्रारम्भ हुआ यह विचार कर लेना अच्छा होगा कि जीवन क्या है और किन किन परिस्थितियों पर टिका है।

दार्शनिकों तथा कवियों आदि ने 'जीवन' शब्द का प्रयोग इतने गुम्फित ढंग से किया है कि उसका वास्तविक अर्थ समझ सकना दुरूह है। उनका लक्ष्य अदृश्यकी ओर संकेत करने का रहा है। जीवन एक संग्राम है जिसमें कभी विजय होती है कभी पराजय, जीवन अनित्य है, जीवन स्वप्न है आदि आदि धारणाओंके प्रचारसे वास्तविकता की ओर दृष्टि जा ही नहीं पाती।

हरबर्ट स्पेन्सरने एक बार कहा था—"Life is a continuous adjustment of internal relations with external relations" अर्थात् बाह्य सम्बन्धोंसे आन्तरिक सम्बन्धोंका अभिन्न समन्वय ही जीवन कहलाता है।' यहां पर 'जीवन' की तह तक पहुंचनेके लिये छटपटाहट है किन्तु सफलता नहीं दीखती।

चित्र अंकित कर देते हैं जैसे कि हमारेमें खिंच रहे हैं। नौकरसे कहा 'अलमारीसे पीली मोटी पुस्तक उठा लाओ' उसके मस्तिष्कमें 'अलमारी', 'पीली', 'मोटी' 'पुस्तक' के चित्र खिंच गये। इन चित्रोंके खिंच जानेमें क्यों देर न लगी ? कारण कि, वह भाषाका ठीक ठीक अर्थ जानता था और उन वस्तुओंसे भली भांति परिचित था जिनकी ओर सकेत किया गया था। अब उस बालककी कल्पना कीजिये जो गर्भमें है—क्या वह सोच विचार सकता है ? कदापि नहीं। न तो उसने किसी वस्तुसे परिचय प्राप्त किया है और न किसीका नाम ही सुना है—पेटके भीतर जागरणहीन निद्रा थी वस्तुओंको देखता तो कैसे ! फिर उनके विषयमें सोचना तो बहुत दूर रहा। भाषा सुनी न थी,जो कुछ शब्द सुनाई दिया करते थे सब माताको, ऐसा तो था नहीं कि जो माताको सुनाई दे। वह उसके कानों तक पहुँचे; माताको दिखाई दे उसकी भी आंखोंमें झूलने लगे आदि। इस प्रकारकी घटनायें शायद अभिमन्यु, शुकदेव और अष्टावक्रके युगमें हुआ करती थीं कि बालक गर्भकी चहारदीवारीके भीतर कई झिल्लियोंके पुर्तमें लिपटा रहने पर भी बाह्य संलापका आनन्द ले सके। अष्टावक्रजीने तो अशुद्ध वेद-पाठ करनेवाले पूज्य पिताको पेटके भीतरसे टोक भी दिया था जिसके फलस्वरूप आठों अंग वक्र हो जानेका शाप मिला। बाहरकी बातें भीतर और भीतरकी बातें बाहर सुनाई देना सम्भावनासे परे है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं परम्परागत जातीय गुणोंकी अमर ज्योतिका पक्षपाती नहीं—हो सकता है कि माता-पिताके गुण प्रवृत्तियाँ आदि गर्भस्थ बालकके रक्तमें प्रवाहित हो रही हों, मस्तिष्कमें बीजरूपसे लिखित हों जो आगे चलकर माता-पिता सदृश विकसित हो जायं ; किन्तु यह कि कान, आँख बन्द किये सिमटा हुआ पड़ा रहने वाला गर्भस्थ मांसपिण्ड बाहरकी बातें देख, सुन सकता है, निपट असंभव है। तात्पर्य यह कि सोचनेकी क्रिया बालकके गर्भावस्थामें . . . फिर

द्वारा प्रत्येक अंग तक शक्ति पहुंचाता, पुनर्नवीन करता, जीर्ण-शीर्ण, मृत पत्तों, फूलों-फलोंको त्यागता, नये धारण करता हुआ बढ़ा होता रहता है। शरीरके कोने कोने में नवीन रस व शक्ति पहुंचानेके लिये रसवाहिनी नाड़ियोंका जाल बिछा रहता है। कुछ ही दिन हुए एक वैज्ञानिकने ठीक लिखा था कि "जीवन के मूलभूत व सर्वप्रधान रहस्यको यह कहकर प्रकट किया जा सकता है कि यह एक प्रकारका शक्ति-व्यापार है, शक्तिका यातायात है। जीवित पदार्थों का मुख्य शारीरिक कार्य यही प्रतीत होता है कि 'शक्ति'का संग्रह और वितरण किया जाय जिससे रचनात्मक कार्य * किये जा सकें।"

तीसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जीवित प्राणियोंमें अपनी प्रतिमूर्ति उत्पन्न करनेकी क्षमता होती है, संख्या-वृद्धिकी शक्ति पाई जाती है। यद्यपि सब जीवोंमें जनन-क्रिया एक प्रकारकी नहीं होती किन्तु किसी न किसी प्रकारकी होती अवश्य है--निम्न कोटिके जीवों--अमीबा,आदि में 'आत्म-विभाजन' की क्रिया होती है, इतर प्राणियों—पशु, पक्षियों आदिमें मैथुन की। मैथुनिक सृष्टिका विकास एक कोश द्वारा होता है। यह कोश वीर्यबिन्दु या जीवनबीज देखनेमें नगण्य किन्तु अपरिमित शक्ति वाला होता है। इसमें विकसित होनेकी आश्चर्यजनक शक्ति छिपी रहती है। मातृगर्भके रासायनिक तरल पदार्थोंके सहयोगसे पनपता रहता है—बढ़ते बढ़ते इतना विकसित हो जाता है कि अपने जनकके रूप, रंग, आकार, गंध, प्रकृति आदिकी सच्ची प्रतिमूर्ति बन जाता है। यह सब गुण जादू भरे कोशमें बचपन से ही वर्तमान रहते हैं। यहाँ तक कि आँखोंकी पुतलियोंका रंग, केश-वर्ण, श्मश्रु, पैर, दन्त, नसकी आकृति आदिके बीज भी अणु रूपमें विद्यमान रहते हैं। इन कोशोंमें एक प्रकारका जीवित तरल द्रव्य जिसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं

*प्रोफेसर एफ० जे० एलन रचित What is life ?"जीवन क्या है"

व्याप्त रहता है। यह जिन्दा लुआब ही सब पशु-पक्षियों और वृक्षोंका आधार है। यदि यह न हो तो जीवन समाप्त हो जाय। जीवन क्या है का सबसे ठीक उत्तर होगा "प्रोटोप्लाज्मकी दौड़ धूप।"

हक्सलेका कहना है कि समस्त जीवनके आधार प्रोटोप्लाज्ममें चार तत्वों-का सम्मिश्रण होता है। तीन तो गैसें (नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन) और चौथा धातु-रहित ठोस तत्व कारबन। इन चारोंमेंसे प्रत्येकमें पुनः कई प्रकारके रासायनिक मिश्रण छिपे रहते हैं। कारबन उन मिश्रणोंकी संख्या शेष तीन तत्वोंके मिश्रणोंसे कहीं अधिक होती है। इसीकी आश्चर्यकारी विभिन्नताओंके फल स्वरूप पाशविक अंगों—चर्म, शृङ्ग, केश, नख, मांसपेशी, धमनी आदिमें वही पूर्वोक्त चार तत्त्व पाये जाते हैं। इतना ही नहीं शाकाहारी, मांसाहारी दोनों प्रकारके पशुओंमें—तृण, पत्र चुगनेवाली गाय, हरिण, शशकों में तथा पशुभक्षक सिंहके अवयवोंमें चार तत्व पाये जाते हैं। आश्चर्यकी सीमा तो तब और नहीं रहती है जब हम देखते हैं वनस्पति जगतमें उत्पन्न होने वाली विभिन्न वस्तुओंमें—यहाँ तक कि विपरीत वस्तुओंमें भी चार तत्व पाये जाते हैं। भिन्न प्रकारके फल, शर्करायें, तैल, मोम, तम्बाकू, अफ़ीम, कुनैन, बैलाडोना, पेय पदार्थ जैसे चाय, काफ़ी, कोको सबमें ही यह चार तत्व पाये जाते हैं जिनसे हमारा शरीर निर्मित है।

F. J. Allen (एफ० जे० एलन) का मत है कि चारों तत्वोंके मेल से बननेवाला जीवित द्रव प्रोटोप्लाज्मका मुख्य तत्व—नाइट्रोजन है। शेष तीन उतने उल्लेखनीय नहीं जितना यह अकेला।

यदि सूक्ष्मरूपसे देखा जाय तो विदित होता है कि सम्पूर्ण पशु-जीवनका ·· स्तम्भ वनस्पतिजगत् है। जो पशु शाकाहारी हैं वे तो शाक-पात खाकर ःते ही हैं जो मांसाहारी हैं वह भी शाकाहारी पशुओंको खाकर ही जीवित

रह पाते हैं—उन शाकाहारियोंका जीवन वनस्पतिके बिना संभव न होता—उनके न होने पर मांसाहारी पशु भी न हुए होते। इस प्रकार प्रकट या गुप्त किसी विधिसे पशुओंका जीवन वनस्पतिजगत् पर ही अवलम्बित है।

वनस्पतियोंमें प्रोटोप्लाज्मका सर्जन हुआ करता है। यही प्रोटोप्लाज्म पशुओंके शरीरमें जाकर सजीवनी धारा बना करता है। आइये देखें वृक्षोंमें प्रोटोप्लाज्म किस तरह बना करता है।

प्रायः लोग समझा करते हैं कि वृक्षका सारा काम जड़ें करती हैं और कोई अंग नहीं। यह असत्य है। सबसे अधिक काम उसकी पत्तियाँ और तने करते हैं। पेड़ोंमें तीन वस्तुओंकी प्रधानता रहती है, पानी, कारबन और मिट्टी-नुमा महीन राख। पौधेका शरीर मट्टी सदृश राखसे नहीं बना है अपितु कारबनसे बना है। यह कारबन वायु-सागरके कारबन डाइ औक्साइडसे पत्तियों द्वारा खींची जाती है। सच पूछा जाय तो वृक्षकी वास्तविक जड़ें हवामें होती हैं। पत्तियाँ ही वह जड़ें हैं। पत्तियाँ न होतीं तो वृक्ष वायुमण्डलसे कार-बौनिक, तथा क्लोरोफाइलका शोषण न कर सकते। पत्तियोंमें एकत्रित हो जाने वाले क्लोरोफाइल, कारबौनिक ऐसिड तथा सूर्यरश्मि एक नवीन तत्वकी रचना करते हैं—आक्सीजन। कारबनको तो अपने शरीर-पोषणके लिये बचा रखा जाता है और आक्सीजनको अगणित रोमकूपों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। वायु उस निर्वासित आक्सीजनको पुरापड़ोसमें बिखेर देता है।

वृक्ष, लता, गुल्मादिकी पत्तियाँ जिन्हें हम आभूषण स्वरूप समझा करते हैं प्रकृतिकी महत्वपूर्ण प्रयोगशालायें हैं जिनमें अहर्निश रासायनिक क्रियायें हुआ करती हैं। नीचे आर्द्रताके समीप रहनेवाली जड़ें इन तक जल और क्षार पदार्थोंका घोल पहुंचाया करती हैं तब तक स्वयं एक बड़ा काम किया करती हैं—विशेष प्रकारकी कम्पमान 'ईथर लहरों' को फँसाया करती है

जिसकी सहायतासे ही कारवन और आक्सीजनका विभाजन शक्य हो पाता है
रेडयो वेवको फँसानेके निमित्त कमरोंमें जैसी वैज्ञानिक जाली तान देते हैं ठी
इसी प्रकारकी गुम्फित जाली इन पत्तियोंमें बनी होती है। इनमें, वातावरण
ईथर-कम्प स्वतः फंस जाया करते हैं। पत्तियोंमें पहलेसे ही क्लोरोफाइल, का
र्बोनिक ऐसिड गैस, जल, क्षार, अमोनिया, नाइट्रोजन, आक्साइड आदि एक
त्रित रहते हैं—ईथर वेव रूपी सभापतिके आते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो जात
है। निर्जीव तरल पदार्थोंके मिक्सचरमें गति और स्फूर्ति आ जाती है—यह
जीवित द्रव **प्रोटोप्लाज्म** कहलाता है। इसमें जबतक क्लोरोफाइल नह
मिलता तबतक सब रंगकी सूर्यरश्मियां प्रभाव डाल देती हैं किन्तु जब व
मिल जाता है तब सब वर्णकी रश्मियां प्रभाव नहीं डाल पातीं केवल विशे
जातिकी रक्त गुलाबी किरणें ही प्रभाव डाल पाती हैं। यही लाल किरणें कार
बोनिक ऐसिडके तत्वोंका संग विच्छेद करती हैं। कारबनको, अपने लिये औ
आक्सीजनको हमारे लिये दे देती हैं।

पत्तियोंमें तैयार हो होकर शाखाओं, जड़ों और तनेमें पहुंचा करता है—
कलिका, पल्लव, पुष्प, फलोंमें भी यही क्रियायें काम करती हैं। इन्हींके परि
णाम स्वरूप सार्थक अथवा निरर्थक पदार्थके रूपमें परिमल, गन्ध, वर्ण, तन्तु
काष्ठ, कंद, तैल, रस, सौरभ, मञ्जरी आदिका सृजन होता रहता है। इन सबक
श्रेय जीवित द्रव प्रोटोप्लाजमको है। हक्सलेने ठीक ही कहा है कि "प्रोटो
प्लाजम एक पदार्थ ही नहीं अपितु एक यंत्र है—ऐसा यंत्र जो सूर्यताप औ
सूर्यरश्मि द्वारा संचालित होता है तथा जो सहस्रों क्रिया-कलाप करता है।

५

जीवनके लिये आवश्यक परिस्थितियां

डाक्टर वैलेसके मतानुसार जीवन टिके रह सकनेके लिये निम्नाङ्कित पांच बातोंकी नितान्त आवश्यकता है।

(१) ऊष्णता-वितरण व्यवस्थित हो, ताकि तापमानकी सीमा सहसा घट बढ़ न जाय।

(२) सूर्यताप और सूर्यप्रकाशकी मात्रा उचित अनुपात वाली।

(३) जलका परिमाण विपुल ; किन्तु समस्त ग्रहमें समरूपसे वितरित।

(४) आवश्यकीय गैसों तथा यथेष्ट घनत्वयुक्त वायुमण्डल।

(५) रात्रि और दिवसका आगमन।

अच्छा हो कि हम लोग क्रमशः एक एक का विश्लेषण करके देखें।

(१) पहला है, तापक्रमकी सीमित अवधि। प्रायः देखा गया है कि जीवनका अस्तित्व पानी जमनेके प्वाइण्टसे लेकर १०८° डिग्री तक सम्भव होता है। इससे ऊपर उठने या नीचे गिरने पर जीवन असम्भव है ;

कारण कि केवल इन्हीं अंशोंके तापमानमें नाइट्रोजन तथा उसके पदार्थ उन तत्वोंको उचित मात्रामें स्थिर रख सकते हैं जिनका होना जीवनके लिये अत्यावश्यक है। प्रोटोप्लाजमके चारों तत्वोंकी उपयुक्त मात्रा इन्हीं अंशोंमें एकत्रित रह पाती है। अधिक या कम होने पर बैलेन्स नहीं रहता।

एक निश्चित मात्राके तापक्रमकी महत्ता इसी बातसे लगाई जा सकती है कि प्रत्येक जीवको उसे बनाये रखनेके लिये अगणित प्रकट व गुप्त साधन करने पड़ते हैं। स्वस्थ मानव-रुधिरका साधारण तापक्रम ९८° डिग्री है। वाह्य जगत्का तापक्रम फ्रीजिंग प्वाइण्टसे चाहे कितना ही कम क्यों न हो जाय, किन्तु मानव अपने भीतरका तापक्रम घटने नहीं देता। अग्नि, ऊनी वस्त्र, धूप, भोजन आदिकी सहायतासे महाशीतके क्षणोंमें भी शरीरका तापक्रम ९८° बनाये रखता है। पशु-पक्षियोंके लिये उनकी केश-रचना सहायक हो जाती है। पक्षियोंके रुधिरमें और भी अधिक उष्णता होती है तभी तो भोजनको पागुर या चबाना नहीं पड़ता। तात्पर्य यह कि बाहरका तापमान चाहे जितना कम हो जाय किन्तु रुधिरका ताप कम नहीं होता। यदि कहीं वह भी कम हो जायगा जीवन रुक जायगा, प्राणी ठंढा पड़ जायगा। ऊपर हमने देखा था कि वाह्य-ताप चाहे जो बना रहे पर रुधिर ताप ९७°से कम और १०७°से अधिक न होना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि बाहरका तापक्रम चाहे जब तक चाहे जितना कम या अधिक बना रहे, जीवन पर प्रभाव ही नहीं डालता। बाहरके तापक्रमका भीतरी तापसे गहरा सम्बन्ध है। यह बात नहीं है कि बाहरका ताप चाहे जितना घटता बढ़ता रहे भीतरी ताप प्रभावित ही न हो। एवरिष्टकी चढ़ाई पर जहाँ तक भीतरी ताप बाहरी तापसे मेल खाता रहा कोई हानि न हुई, पर जैसे ही विषमता असह्य हुई कि जीवन समाप्त! आस्ट्रेलिया और मध्यभारतका तापक्रम जिन दिनों ११५° या १२०° रहता

है उस समय भी मनुष्य किन्हीं न किन्हीं साधनों द्वारा रुधिरका ताप बढ़ने नहीं देता।

किसी भी कारणसे यदि रुधिरका ताप १०५° से अधिक हो जाय तो जीवन टिकना सन्देहजनक है। साधारण स्वास्थ्यसे छै सात डिग्री अधिक हो जाते ही घातक परिणाम उपस्थित हो जाते हैं। अतः निश्चित है कि जीवनकी यह परिस्थिति बड़ी नाज़ुक है।

पृथ्वीका कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहां बारहों मास एक ही मात्राका तापमान रहता हो, एक ही ऋतु रहती हो। माना कि शीतप्रधान देशोंमें बहुधा फ्रीज़िंगप्वाइटसे नीचे उतर जाया करता है,किन्तु बारहो मास यही दशा नहीं रहती। ठीक उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव अथवा जहां भी एक मिनटके लिये तापक्रम नीचा रहता है किसी प्रकारका पौधा या पशु-पक्षी नहीं पैदा होता।

यदि पूर्ण पृथ्वीका तापक्रम सदा फ्रीज़िंग प्वाइण्टसे नीचे रहा करता; कभी बढ़ता हो नहीं; अथवा सदा खौलनेके अंशतक बना रहता कभी उतरता ही नहीं अथवा सदा खौलनेके अंश तक बना रहता कभी उतरता ही नहीं तो पृथ्वी निर्जीव ग्रह होती। यह कथन भ्रममूलक है कि उस समय और भांतिके जीव हुये होते, वे जीव ऐसे होते जो उस तापमें ही अपनेको जीवित रख सकते। निश्चित सीमाओंसे ऊपर जाने या नीचे उतरनेपर प्रोटोप्लाज़्मके तत्व पारस्परिक अनुपातमें नहीं रह सकते हैं—जीवाणु निर्जीव हो जाते हैं।

(२) तापका उत्पादक सूर्य प्रकाश है। अन्य परिस्थितियोंके होते हुए भी इसके अभावमें जीवन सम्भव था, संदिग्ध है। ऊपरवाले विवरणमें देखा था कि पशु-पक्षियोंका जीवन वनस्पतिपर निर्भर है। वनस्पति पौधों आदिका जीवन सूर्यरश्मि पर आश्रित है। इसीकी सहायतासे पत्तियां, वायुमण्डलकी कारबोनिक एसिड खींचा करती हैं।

सूर्यसे दूरी भी बड़े महत्वकी है। अत्यन्त निकट अथवा अत्यधिक दूर
र तापक्रमके बढ़ने-घटनेकी गड़बड़ियां होने लगतीं। गणित द्वारा देखा
है कि यदि सूर्यकी हमसे दूरी वर्तमानसे आधी हुई होती तो तापक्रम
न समयके चौगुना हुआ होता ; यदि दूरी दूनी होती तो ताप आधा
ा होता। दोनों ही दशाओंमें जीवन असम्भव था—जीवन तो क्या
ग्रज्म ही न बन पाता।

सौरमण्डलके मध्य हमारे ग्रहकी स्थिति बड़े अच्छे स्थान पर है। न तो
ाप अत्यधिक आता है और न अत्यल्प कहा जाता कि हम लोग सौर-
लके शीतोष्ण कटिबन्धमें हैं। जीवनकी तीसरी, किन्तु सर्व प्रधान आवश्य-
है जल। समस्त भूमण्डलपर कोई प्राणी जल-शून्य नहीं है। पृथ्वीसे
की जड़ें जल न सोखतीं तो प्रोटाप्लाज्म न बन पाता। प्रोटोप्लाज्ममें
ता लानेका श्रेय जलको ही है। हमारे शरीरमें कई पदार्थ सम्मिलित
इनमें अकेले जलका भाग कुलका तीन चौथाई है। शेष एक चौथाईमें
पदार्थ हैं।

किसी भी ग्रहमें जीवन-विकासके लिये आवश्यक है कि उसमें जलकी
त मात्रा समस्त परिधिपर सम रूपसे वितरित हो ताकि प्रत्येक स्थानपर
सके। यह काम समुद्रों का है। समुद्री गर्त्तोंमें जलराशि सञ्चित रहती
वाष्प बनकर उड़ती और दूर दूर स्थानोंको जहां जलकी कोई साम्भवना
, पहुंचा करती और पानीका रूप धारण किया करती है।

जल एक और बड़ा काम करता है—तापक्रमको उचित सीमासे आगे
े न जाने देना।

) जलराशियोंका सञ्चित कोश और वायु-सागर न हुए तो सूर्यरश्मियां
ां पड़तीं वहीं उष्णता होती—जहां सूर्य न होता वहां अत्यधिक नितान्त

शीत पड़ता। सूर्यके चले जानेपर समुद्र एवं वायुमण्डल ही ऐसे हैं जो उष्णता बिखेरते रहते हैं।

समुद्रोंका प्रभाव दो रूपमें पड़ता है। एक तो निकटवर्ती वायुमण्डलको ताप देते समय और दूसरे दूरवर्ती स्थानोंको प्रभावित करते समय। समुद्रका गुण है शनैः-शनैः उष्ण होना और पर्याप्त मात्रामें सूर्यताप संचित कर लेना ताकि सूर्यास्तके समय तक कई फ़ीटकी गहराई तक उष्ण हो जाय। जलके विपरीत वायुमण्डल शीघ्र उष्ण हो जाता है और शीघ्र उष्णता छोड़ देता है। सूर्यास्त होते ही वायुमण्डल तो शनैः-शनैः शीतल हो जाता है, किन्तु जल-निधि फिर भी महोष्णता बिखेरना प्रारम्भ करता है—निकटवर्ती निचले वायु-सागरको गर्म बनाने लगता है। वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान करके देखा है कि एक घनफीट पानीकी उष्णता ३००० घनफीट वायुको उतने ही अंशोंमें उष्ण कर देती है जितने अंशोंमें अपनेको शीतल। अर्थात् इधर वातावरण जितना उष्ण होता है उतना उधर समुद्र शीतल। एक घनफीट पानीकी उष्णतासे तीन हज़ार घनफीट वायु उष्ण बन जाती है। यही कारण है कि सागरों और महा-सागरोंकी जल-सतह धरामण्डलमें भरकर निचले वातावरणको पर्याप्त उष्ण बनानेमें सफल हो जाती है। प्रकृतिमें क्या ही विचित्र क्रीड़ायें हुआ करती हैं। सायं-काल हुआ नहीं कि वायुमण्डल शीतल होने लगा—किन्तु गम्भीर जलधि कब पीछा छोड़ सकता था, सूर्य गया तो वह सही। बेचारे वायुमण्डलको एक न एक उष्ण बनाये ही रखता है—एक ऊपरसे दूसरा नीचेकी ओरसे।

इतना दिया जानेपर भी बेचारा वायुमण्डल अकिंचनका अकिंचन ही रहता है। समुद्र द्वारा प्राप्त होनेवाले तापको स्थलगामिनी पवन-धारायें ले जाती हैं। उस समस्त क्षेत्रमें, जहां सूर्याभाव होता है, उष्णता वितरित कर देती हैं। स्वयं रिक्त हस्त,—निर्धनको निर्धन।

अभी कुछ ही देर पूर्व हमने देखा था कि दिनमें सूर्यसे एवं रात्रिमें समुद्रसे उष्णता लेकर धरातलमें फैलानेका काम यही करता है। यदि पर्याप्त घनत्व न होता तो वितरणका कार्य भी शक्य न हो सकता था। ध्रुवस्थलोंमें घनत्वके अभावके फल स्वरूप ही ताप नहीं टिकता। बहुत ऊंचाईपर जहांका घनत्व कम होता है ताप कम रहता है। और तो और; विषुवत रेखापर भी १८००० फ़ीटकी ऊंचाईपर हिम पड़ना प्रारम्भ हो जाता है कारण कि इस ऊंचाईका घनत्व समुद्रतलके घनत्वसे आधा रह जाता है।

इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमारे धरातलके निकटवाला वायुमण्डल वर्तमान समयसे आधे घनत्वका हुआ होता तो बर्फ ही बर्फ जमा होता—जीवन असम्भव था।

घनत्वके अतिरिक्त वायुमण्डलकी गैसें भी बड़े महत्त्व की हैं। इन गैसोंका होना उतना ही आवश्यक है जितना कि तापक्रम या घनत्वका। वृक्षोंका प्रथम भोज्य नाइट्रोजन है। किन्तु शुद्ध नाइट्रोजन पचा जाना वृक्षोंकी शक्तिसे परे है। अमोनियाकी सहायतासे यह कार्य हो पाता है यद्यपि वायुमें अमोनियाका दसवां भाग ही होता है किन्तु इसी अल्प मात्रासे ही सब काम चल जाते हैं।

वायुमण्डलकी अन्य आवश्यक गैस कारबोनिक एसिड है। इसका वायुसे अनुपात चार और दस सहस्रका होता है। प्रोटोप्लाज्म बनानेके लिये कार-बोनिक एसिड उतना ही आवश्यक है, जितना कि पशुओंके लिये वायु। कारबोनिक एसिड वृक्षोंके लिये अमृत है किन्तु पशु पक्षियोंके लिये विष। बहुत अच्छा हुआ जो इसकी मात्रा वायुके दस हजार पीछे चार ही है। इससे दुगुनी या तिगुनी हुई होती तो सारा वायुमण्डल विषाक्त नज़र आता। प्रारम्भमें बहुत काल तक सारा वातावरण ज़हरीला रहा था; किन्तु वृक्षोंने शनैः शनैः इसे शुद्ध किया तत्पश्चात् जन्तुओंने पग पर पदार्पण किया।

यदि समुद्र न होते तो रात्रि होते ही वायुमण
करती, अर्द्ध रात्रिके पहले पहल तापमान बर्फ जमने
करता। सूर्यकी अनुपस्थितिमें जलनिधि ही वाता
रखता है।

समुद्रका द्वितीय गुण था—दूरवर्ती स्थानोंको
प्रकार ? जल वृष्टि द्वारा। सभी जानते हैं कि स्थलसे
विस्तृत है। इतनी अधिक मात्रामें होना, तथा एव
पर्याप्त न था—समान रूपसे कोने-कोनेतक पहुँचने
वाष्प आकाश मार्गसे होकर दूर-दूर भ्रमण करता तृ
बुझाकर जीवनको सम्भव बनाता है। सब स्थानपर
धरा-धान्यका सेचन न हुआ होता तो कहीं मरुस्थ
कहीं ऊजड़, जीव-पशु-वृक्ष-विहीन प्रदेश। अब
अधिक होते।

(३) समुद्रके पश्चात् अन्य आवश्यक पदार्थ है व
हम सभी जानते हैं कि जीव अन्य सब अभावोंकी
किन्तु वायु-अभाव की नहीं। केवल वायुमण्डल ही
पर्याप्त घनत्ववाला वायुमण्डल वाञ्छनीय है। साधार
ग्रहोंमें भी वायुमण्डल हैं। किन्तु वे नामचारको हैं
नहीं।

घनत्व अधिक होनेसे सूर्यताप रुका रहता
भागता। सूर्यास्तके पश्चात् भी गर्मी कारागारमें व

अभी कुछ ही देर पूर्व हमने देखा था कि दिनमें सूर्यसे एवं रात्रिमें समुद्रसे उष्णता लेकर धरातलमें फैलानेका काम यही करता है। यदि पर्याप्त घनत्व न होता तो वितरणका कार्य भी शक्य न हो सकता था। ध्रुवस्थलोंमें घनत्वके अभावके फल स्वरूप ही ताप नहीं टिकता। बहुत ऊंचाईपर जहांका घनत्व कम होता है ताप कम रहता है। और तो और; विषुवत रेखापर भी १८००० फ़ीटकी ऊंचाईपर हिम पड़ना प्रारम्भ हो जाता है कारण कि इस ऊंचाईका घनत्व समुद्रतलके घनत्वसे आधा रह जाता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमारे धरातलके निकटवाला वायुमण्डल वर्तमान समयसे आधे घनत्वका हुआ होता तो बर्फ ही बर्फ जमा होता—जीवन असम्भव था।

घनत्वके अतिरिक्त वायुमण्डलकी गैसें भी बड़े महत्त्व की हैं। इन गैसोंका होना उतना ही आवश्यक है जितना कि तापक्रम या घनत्वका। वृक्षोंका प्रथम भोज्य नाइट्रोजन है। किन्तु शुद्ध नाइट्रोजन पचा जाना वृक्षोंकी शक्तिसे परे है। अमोनियाकी सहायतासे यह कार्य हो पाता है यद्यपि वायुमें अमोनियाका दसवां भाग ही होता है किन्तु इसी अल्प मात्रासे ही सब काम चल जाते हैं।

वायुमण्डलकी अन्य आवश्यक गैस कारबोनिक एसिड है। इसका वायुसे अनुपात चार और दस सहस्रका होता है। प्रोटोप्लाज्म बनानेके लिये कारबोनिक एसिड उतना ही आवश्यक है; जितना कि पशुओंके लिये वायु। कारबोनिक एसिड वृक्षोंके लिये अमृत है किन्तु पशु पक्षियोंके लिये विष बहुत अच्छा हुआ जो इसकी मात्रा वायुके दस हजार पीछे चार ही है। इससे दुगुनी या तिगुनी हुई होती तो सारा वायुमण्डल विषाक्त नजर आता प्रारम्भमें बहुत काल तक सारा वातावरण जहरीला रहा था; किन्तु वृक्षोंने शनैः शनैः उसे शुद्ध किया तत्पश्चात् जलचरोंने धरा पर पदार्पण किया।

धराखण्डका ताप कम होता है। निचले वातावरणमें शीतलता अधिक होती है, अतः जलवृष्टि सूखने नहीं पाती। मेघों द्वारा दिये गये जलसे असंख्य निर्झर झरने लगते हैं। सरिताओंका पुष्ट इठला इठलाकर प्रियतम सागरकी ओर द्रुतगतिसे भागने लगता है। जहां जहां जाता शुष्कधराको शीतल करता। उद्यान, उपवन, शस्य आदिको जगाता चलता है। पेड़ पौधोंसे शोभा तो बढ़ती ही है शीतलता भी बढ़ती, तापक्रम बढ़ने नहीं पाता। वनस्पतिके बाहुल्यसे वातावरणकी शुद्धि भी होने लगती है। इन सबमें बचा हुआ जल फिर वहीं समुद्रमें पहुंच जाता है जहांसे चला था।

इस चक्रकी गति कभी रुकती नहीं। प्रतिक्षण पहिया घूमा करती है। हमें तब और भी अधिक आश्चर्य होता है जब देखते हैं कि इस दुर्वह चक्र का भार रज-कणके दुबले कंधों पर अवलम्बित होता है।

मेघ और जलवृष्टिका एक मात्र आधार स्तम्भ वायुमण्डलान्तर्गत भ्रमण करनेवाले धूल परमाणुपर हैं। पचास वर्ष पहले वैज्ञानिकोंको इस कथन पर सन्देह था कि धूलकणों पर ही शीतलीभूत वाष्प आसन जमाती है। अतः उन्होंने प्रयोग किये और सत्यताका प्रमाण पाया। कुछ प्रयोग इस प्रकार थे— दो कांचके पात्रोंमें अलग अलग प्रकारकी वायु भर दी। एकमें साधारण वायु थी दूसरेमें रूईसे छनी हुई। इस वायुमें रजकण आदि किसी प्रकारके परमाणु न थे। दोनों बर्तनोंकी तहमें थोड़ा थोड़ा पानी भी था। पानी इतना गर्म किया गया कि वाष्प बनने लगी। जब तक भाप बनती रही दोनों बर्तन एक प्रकार बने रहे, किन्तु जैसे ही उसमें शीतलता पहुंचाई गई कि बिना छनी वायुवाले पात्रमें धूम्र रेखायें लहराने लगीं, पर छनी हुई वायुवाला पात्र अविकृत बना रहा, उसमें किसी प्रकारका कुहरा धुंआ आदि न दिखाई दिया। रजकण ने ही नहीं, शीतलोन्मुख वाष्प बैठती तो किसकी पीठ पर। इसी प्रकारके

प्रयत्नके दो खोखले बेलन-नुमा पात्र जिनमेंसे एकमें छनी हुई रज-रहित वायु और दूसरेमें बिना छनी रज-युक्त वायु लेकर उनसे प्रकाश फेंक दिया। छनी हुई वायुवाले बेलनमें पूर्ण अन्धकार था किन्तु बिना छनी वायुवाला बेलन प्रकाशित था, चमक रहा था।

कहा जा चुका है कि वायुमण्डल रात्रि होते ही जब शीतल हो चलता है तब समुद्र द्वारा उष्ण किया जाता है। "समुद्र वायुमण्डलको उष्ण कर देता है" का क्या अर्थ हुआ, वायुमण्डलके किस पदार्थको उष्ण कर देता है? इसी रज संसारको। पहले समुद्र-सतहके निकटवर्ती रजसमुदाय उष्ण हो जाते हैं, वे भागते रहते हैं और उनके सम्पर्कमें आने वाले अन्य समुदाय भी उष्ण होते जाते हैं। मरुभूमिमें अधिक उष्णता व अधिक शीत पड़नेके प्रधान कारण भी वहांके रजकण ही होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सूर्यकी अनुपस्थितिमें तापमानको गिरनेसे बचानेका तथा महाशीत न पड़ने देनेका सारा श्रेय रजकणोंको है। यदि यह न होते तो उष्णता-वितरण समरूपसे न हो पाता।

दूसरा पहलू उष्णता रोकनेका है। यह पहले पहलूसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि वायुमण्डलमें धूलकण न होते तो सूर्यताप साराका सारा पृथ्वीसे निकल भागा करता—इसे मार्गमें रोकनेवाला कोई न होता। धूलकण ही उसके मार्गमें रोक बनकर सीमित रोक देते हैं। सूर्यके भीषण तापको पूर्ण मात्राको भी पृथ्वी तक आनेसे रोकते हैं। इससे पृथ्वी झुलसने नहीं पाती अपने हुये पूर्ण तापको निकलने नहीं देते। यदि वायुमण्डलमें रजकण नाममात्रको भी न होते तो अपरिमित सूर्यताप धरातल तक चला आता—अत्यधिक [illegible] यहांकी भूमि सूखी [illegible] जलरहित हो जाती—[illegible] [illegible]। ऐसे ही [illegible], [illegible] रूपसे होती [illegible] है। इससे ही निश्चित है कि ऐसी दशा न होती क्योंकि रजकण ये ही नहीं,

सम्भव है ऊंचे-ऊंचे पर्वत शीघ्र शीतल हो जाते। समुद्र-वाष्प उन्हींसे टकराकर विना मेघ मूसलाधार पानी वरसाया करती। वहुत संभव है, सूर्याभावमें टैम्परेचर इतना गिर जाया करता कि वाष्पका पानी भी न वनता सीधा हिमराशि वन जाता। ठीक ठीक कल्पना कर सकना कठिन है, किन्तु इतना ध्रुव सत्य है कि पशु और वृक्षादि जीवन सम्भव न था।

रूपवान् धूलकण रूपरहित वायुसे कहीं अधिक स्थूल और वोझिल है। वायुके गतिमान होनेके कारण ही धूलकण अन्तरिक्षमें टिके रहते हैं, घूमते रहते हैं। यदि एक मिनटके लिये सारा वायुमण्डल गतिहीन और स्तब्ध हो जाय तो सम्पूर्ण धूलिकण नीचे आ गिरें। रजकण हवाके पुछल्गे हैं। जिस ओर हवा चलती है उसी ओर यह भी दौड़ते हैं—कभी आंधी, कभी तूफान, कभी ववंडर, कभी पूर्व पश्चिम या उत्तरकी ओर तथा कभी ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर। वायुमें गति लाने वाला तथा इन घटनाओंका सूत्रधार सूर्य है। धरातल सव स्थानों पर वनस्पति वाला अथवा मैदानी अथवा जलयुक्त नहीं है—एकसा नहीं है भिन्न भिन्न प्रकारका है। पर्वत, रेगिस्तान, काली मिट्टीकी सतह सूर्यतापसे शीघ्र उष्ण हो जाती है— अन्य वनस्पतियुक्त स्थानों की भूमि उष्ण नहीं होती, सरिता सरोवरोंकी सतहें और भी शीतल रहा करती हैं। इस प्रकार तापमें समानता न होनेके कारण ही वायुगतिमें भिन्नता, वक्रता, अव्यवस्था आदि आ जाती हैं। सूर्यरश्मियां तो पृथ्वीकी एक पेटी पर एक समान ही पड़ी रहती हैं; किन्तु धरातलकी वनावटमें भिन्नता हो जाती है। वायुगतिमें भिन्नता आने पर दो विपरीत दिशाओंमें भागनेवाली [illegible]ओंमें टकराती हैं। इनके भागने व टकरानेसे विद्युत धाराओं [illegible] है। प्रत्येक कण कुछ न कुछ मात्रामें विद्युतशक्ति उत्पन्न [illegible]में असंख्य परमाणु भरे पड़े हैं। इन्हीं में [illegible]

पदार्थ जो बिना यंत्र दिखाई नहीं देते —जैसे अणु, इलैक्टन, प्रोटोन, न्यूक्लीअ हैं। यह संख्यामें रजकणोंसे असंख्यगुना अधिक हैं। इन सबके लिये वर्तमान समयमें वैज्ञानिक लोग बड़ी-बड़ी खोज कर रहे हैं। उनके दौड़ने पर रेखामार्गोंका चित्र लिया जाता है और देखा जाता है कि कितनी विद्युतशक्ति उत्पन्न करता है। जो हो, वायुमण्डलमें पाई जाने वाली वस्तुओंमें (रजकण जलवाष्प, गैस आदि) में विद्युत भी एक है और मुख्य है। जीवन-उत्पत्ति में इसका भी हाथ है। पत्तियां अपने जालमें इसे फंसा लेती हैं और इसीकी सहायतासे प्रोटोप्लाज्म बना करता है।

६

दिन-रात्रिका क्रमिक आवागमन

जीवनके लिये दिन और रातकी कम महत्वपूर्ण आवश्यकता नहीं हैं। दिवस रात्रिके आवागमनको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ग्रह या पिण्ड अपनी धुरी पर घूमता रहता है चन्द्रमा या बुधकी भांति अचल नहीं हैं यदि दिन ही दिन हुआ होता—रात्रिका नाममात्र न होता तब कई आपत्तियां आ उपस्थित होतीं। रात्रि आनेसे होता यह है कि दिनभरका ताप जो अधिक मात्रामें संचित हो जाता है निकल जाता है; केवल उतना ही बच रहता है जितनेसे हानि न हो। यदि रात्रि न होती तो दिनका ताप बढ़ता ही रहता कम न होता। ऐसी परिस्थितिमें जीवनका पनपना कठिन ही नहीं [illegible] था।

[illegible] है दिन और रात की लम्बाई। यदि सौ घण्टेका दिन [illegible] हुई होती तो दिनमें पृथ्वी इतनी उष्ण हो जाती कि [illegible] रात्रिके प्रथम दस-पन्द्रह घण्टोंमें सारा ताप निकल जाता,

शेष घण्टोंमें वायुमण्डल इतना शीतल हो जाया करता कि सम्पूर्ण पृथ्वी हिमाच्छादित रहा करती, पानी तरलरूपमें न आ पाता, वनस्पतिकी पत्तियाँ प्रत्येक रात्रिको इतनी मुरझा जाया करतीं कि दिनके सौ घण्टोंमें पुनः अंकुरित न हो पातीं। सच तो यह है कि किसी प्रकारकी वनस्पति सम्भव न होती। हमारा रात्रि-दिवसका वर्तमान विधान—अर्थात् लगभग बारह घण्टेका दिन और उतने की ही रात्रि, अति सुविधाजनक है। रात्रिके अपमार्द तक समुद्र आदिसे उष्णता मिलती ही रहती है। बारह बजेसे चार बजे तक कुछ शीतलताका प्रचार होता है कि तब तक सूर्यताप आ धमकता है और धरातलको महाशीतसे बचा लेता है। ध्रुवप्रदेशोंको लेकर देखें तो पता चलेगा कि वहां प्रायः छः मासका दिन और छः मासकी रात्रि होती है। फिर भी प्राणी पाये जाते हैं, क्यों? इसका कारण यह है कि जिन प्राणियों, जीव-जन्तुओं हम आज वहां पाते हैं ये वहीं विकसित न हुए थे, बल्कि मध्य भूमण्डल जाकर बस गये हैं तथा वैज्ञानिक साधनोंके बल पर जीवन-यापन करते हैं यदि समस्त भूमण्डल पर छः मासका दिन और छः मासकी रात हुई होती जीवनका विकास ही न होता, वैज्ञानिक साधनों द्वारा जीनेकी कौन कहे।

इस प्रकार हमने देखा कि जीवनकी आवश्यक परिस्थितियां कौन हैं उष्णता-वितरणकी व्यवस्था समुचित व नियमित होना, तापमानकी सीमा निश्चित अवधिसे ऊपर नीचे न होना, सूर्यताप और सूर्यप्रकाश की मात्रा आवश्यकतासे कम या अधिक न मिलना, जलपरिमाण पर्याप्त मात्रामें, किन्तु ओरे गृहतल पर समरूपसे वितरित होना, वायुमण्डलमें जीवनोपयोगी गैसों, वहे घनत्व, रजकण और विद्युत्प्रवाहका उपस्थित होना। और रात्रि-दिवस तात्कल्यसे आना जाना इत्यादि ऐसी आवश्यकतायें हैं कि एक की भी न्यूनतासे सारे चक्र में धक्का लगनेकी आशंका थी।

मानव-प्रादुर्भावसे लेकर आज तक इस बातका पूर्ण प्रमाण नहीं मिल सका कि पृथ्वीको छोड़कर अन्य किस सौभाग्यशाली पिण्डमें उपर्युक्त सम्पूर्ण परिस्थितियां उचित मात्रामें प्रस्तुत हैं। श्रेष्ठातिश्रेष्ठ यंत्रोंकी सहायतासे निकटतम उपग्रहों और ग्रहोंका कुछ अध्ययन किया जा सका है, दूरातिदूरस्थित पिण्डोंका वह भी नहीं हो सका है। देखें कब मनुष्य इन अमर चक्षुओंकी सत्यता खोज पाता है।

निकटवर्ती उपग्रहों और ग्रहोंका सूक्ष्म उल्लेख अनुपयुक्त न होगा। अतः देखें किन किन ग्रहोंमें उपर्युक्त परिस्थितियां पाई जाती हैं और किस मात्रा तक।

सबसे निकट चन्द्रमा है इसीका अध्ययन विशाल रूपसे हो चुका है। डाक्टर जी० जान्स्टन स्टोने जो चन्द्रमाके विशेषज्ञ हैं, कहते हैं, "चन्द्रमा अपने वायुमण्डलमें कारवोनिक ऐसिड जैसी बोझिल गैसको भी नहीं रोक सकता, हलकी गैसोंका तो कहना ही क्या। आक्सीजन, नाइट्रोजन, जलवाष्पका एक अणु भी नहीं, कारण केवल यह है कि चन्द्रमाकी मात्रा (तौल, बोझादि) बहुत कम होनेसे तदुत्पन्न गुरुत्वशक्ति भी न्यून है।" वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि ब्रह्माण्डके अनन्त विस्तारमें गैसें पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं। यदि ऐसा है तो ये किसी भी छोटेसे छोटे पिण्ड द्वारा आकर्षित की जा सकती हैं—चाहे अल्प मात्रामें ही सही। इस नियमानुसार चन्द्रमाको भी आकर्षित करना चाहिये ; किन्तु नहीं करता। कारण यह है कि इसने अपनी धुरी पर घूमना छोड़ दिया है—सूर्यके सम्मुख रहनेवाला भाग सदैव [illegible]ता है। चन्द्रमाका धरातल सदा तपते रहनेके कारण गैसोंको सुखाकर [illegible] गैसें काफूर हो जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व लोगोंका विश्वास [illegible] एक समय जीवित पिण्ड था, वहां भी जीवन था, मानव था

आदि। किन्तु अब इस कथन पर सन्देह किया जाने लगा है। अन्य उपग्रहों का पता नहीं चल सका।

ग्रहोंमें सूर्यके सबसे निकट ग्रह बुध है। इसका आकार और भी छोटा है, अतः गैसोंको उड़ जानेसे रोक नहीं सकता। निश्चित होगया है कि इसके पास वायुमण्डल नहीं, रात्रि-दिवसकी शृङ्खला नहीं, अतः जीवनकी कोई सम्भावना नहीं।

दूसरा ग्रह शुक्र है। इसमें दिन-रात्रिकी शृङ्खला तो है, किन्तु लम्बी है। हमारे बीस दिनोंके बराबर वहांका एक दिन है। ताप भी कुछ उष्ण सा है। इसके पास वातावरण होनेके पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। ऊपरी वायुमण्डलमें आक्सीजन नहीं है सम्भवतः निचले भागमें है किन्तु उसे विशुद्ध करनेवाले वृक्षोंका अभाव है। अतः जीवनकी आशा नहीं।

इसके पश्चात् हमारी पृथ्वी है। इसकी परिस्थितियां कही जा चुकी हैं।

तब मंगलका नम्बर आता है। बस, इसी ग्रहमें सबसे अधिक परिस्थितियां पाई जाती हैं। इसका वायुमण्डल पृथ्वीके वायुमण्डलसे कुछ ही कम घना कई बार उसमें मेघ देखे गये हैं। सूर्यताप भी लगभग उतनी ही मात्रामें पहुंचता है, वायुमण्डलमें पाई जाने वाली गैसें, आक्सीजन, जलवाष्पादि पाये जाते हैं। रात्रिदिवसका क्रम भी है और वह पृथ्वीके क्रमसे असाधारण रूपमें मिलता है। २४ घ० ३७ मि० ५९ से० का दिन-रात होता है। किन्तु एक बात नहीं मिलती। मंगल ग्रहकी मात्रा पृथ्वीसे बहुत कम है। इसका व्यास केवल ४२१५ मील है, जब कि पृथ्वीका ८,००० मील। इस कारण उसकी गुरुत्वशक्ति पृथ्वीसे कम है। कितनी कम है, इसका अनुमान इससे लग जायगा कि पृथ्वी पर जिस वस्तुकी तौल १०० सेर होगी वह मंगल पर २८ सेर होगी। मंगलग्रहकी रातें बड़ी ठंडी होती हैं। कभी कभी इतं

७

सृष्टिके विकास का सिद्धान्त

विश्वसृष्टि, जीव-रचना, आदिके विषयमें दो ही मुख्य उपपत्तियां हो सकती हैं। एक तो यह कि जैसा आज देखते हैं वैसी ही आदिकालसे चली आई है। दूसरी यह कि इन असंख्य पशुओं व पौधोंका प्रस्फुटन कुछ इने-गिने पशुओं व पौधोंसे हुआ।

दूसरी उपपत्तिको विकासवाद कहते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें इसीकी धूम है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है विकासवादके प्रमाण मिलते जाते हैं। प्रथम उपपत्ति अर्थात् 'जीव-सृष्टिमें आरम्भसे लेकर आज तक एक भी फेर-बदल या परिवर्तनन हीं हुआ" धीरे धीरे निम्न श्रेणी और कट्टर-पन्थियों तक ही सीमित होती जारही है। दूसरी उपपत्ति, [illegible] मनीषी व्यक्तियोंकी मनोरंजन-सामग्री होती जारही है। उन्हें दिनोंदिन विश्वास होता जारहा है कि सृष्टिमें अनवरत गतिसे परिवर्तन होता आया है आज जो नाना विधिकी वनस्पति और प्राणी देख पड़ते हैं उनके पूर्वज धरतीकी

फ़ीट तक तुषार जम जाता है, काले धब्बे दीख पड़ते हैं। इनके विषयमें सोचा जाता है कि सघन वनस्पति है। वातावरणमें आक्सीजनकी उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वनस्पति हैं क्योंकि बिना वनस्पतिके उसे कौन शुद्ध कर सकता है। इसी प्रकार नहरें होनेकी भी धारणा है। इतना होने पर भी अभीतक ठीक ठीक निश्चित नहीं हो पाया कि वहां जीवन है या नहीं।

प्रसन्नताकी बात है कि मंगलग्रह पिछली जुलाई-अगस्तको पृथ्वीके अतिथि होने आये थे। इनकी दूरी बहुत कम रह गई थी—केवल साढ़े तीन करोड़ मील। संसार भरके नक्षत्र-विद्यार्थी विशेषकर मंगल ग्रहके जिज्ञासुओंने उन दिनों फोटो लिये होंगे। अध्ययन किये होंगे। इस कार्यका भार डाक्टर वाटरफील्ड पर सौंपा गया था। देखें निकट भविष्यमें क्या रिपोर्ट निकलती है।

मंगलके पश्चात् बृहस्पति आता है। दिन-रात ९ घंटा ५२ मिनटके। जैफेका कहना है कि बृहस्पति लौह धातुका है, जो बर्फसे ढका है। इसका वातावरण महा शीतल गैसका है उसमें उष्णता बहुत कम है, जीवनकी आशा नहीं।

शनि, यूरेनस, नैपच्यून तथा प्लूटो सूर्यसे बहुत दूर होनेके कारण सदैव हिमाच्छादित रहते हैं, और उनके वातावरणमें जीवनोपयोगी गैसें नहीं। अतः प्राणी-अस्तित्व अनिश्चित है।

इन ग्रहोंका ही जब पूरा निश्चय नहीं हो पाया, तब नक्षत्रोंकी चर्चा करना व्यर्थ होगा।

७

सृष्टिके विकास का सिद्धान्त

विश्वसृष्टि, जीव-रचना, आदिके विषयमें दो ही मुख्य उपपत्तियां हो सकती हैं। एक तो यह कि जैसा आज देखते हैं वैसी ही आदिकालसे चली आई है। दूसरी यह कि इन असंख्य पशुओं व पौधोंका प्रस्फुटन कुछ इने-गिने पशुओं व पौधोंसे हुआ।

दूसरी उपपत्तिको विकासवाद कहते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें इसीकी धूम है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है विकासवादके प्रमाण मिलते जाते हैं। प्रथम उपपत्ति अर्थात् 'जीव-सृष्टिमें आरम्भसे लेकर आज तक एक भी फेर-बदल या परिवर्तनन हीं हुआ" धीरे धीरे निम्न श्रेणी और कट्टर-पन्थियों तक ही सीमित होती जारही है। दूसरी उपपत्ति, विचारशील ... मनीषी व्यक्तियोंकी मनोरंजन-सामग्री होती जारही है। उन्हें दिनोंदिन विश्वास होता जारहा है कि सृष्टिमें अनवरत गतिसे परिवर्तन होता आया है आज जो नाना विधिकी वनस्पति और प्राणी देख पड़ते हैं उनके पूर्वज धरतीकी

उत्पत्तिके समय ठीक ऐसे ही न थे। उस समय उत्पन्न होनेवाले जीव-जन्तु अत्यन्त सादा और सूक्ष्म थे। तदनन्तर, ज्यों ज्यों समय बीतता गया उनमें शनैः शनैः कुछ-कुछ भिन्नता आती गई। कालान्तरमें इनसे कुछ निराले और ऊँचे दर्जेके प्राणियोंका आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधनका विशाल चक्र मन्दगतिसे आजतक घूमता आया। इस भ्रमणशील पहिया-के पदाङ्कोंका अध्ययन करना ही हमारा वास्तविक ध्येय है।

विकासवादकी उत्पत्ति पढ़नेपर शङ्का उत्पन्न होती है कि यदि वर्तमान समयमें दीख पड़नेवाले पशु व वृक्षोंका प्रादुर्भाव कुछ इने गिने सरल सूक्ष्म पशु, वृक्षोंसे हुआ,तो इनकी बनावटमें भिन्नता और परिवर्तन किस कारण हुई। सब जीव एक ही आकृति,आकार, वर्णके क्यों न हुए? एक ऊंटकी भांति लम्बी बेतुकी गरदनवाला और दूसरा हाथीकी भांति बेतुकी लम्बी नाकवाला क्यों हुआ। एक हिरनकी भांति लम्बे सींगवाला दूसरा ऋक्षकी भांति बिना सींगवाला क्यों हुआ? आदि। विपरीत दीख पड़नेवाले जन्तुओंका मूल स्रोत एक होना सुनकर उपर्युक्त शङ्कायें उठ खड़ी होना स्वाभाविक ही है। इन शङ्काओंका सफल समाधान कर लेना ही समस्याको सुलझा लेनेके बराबर होगा।

सबसे प्रथम इन शङ्काओंका उत्तर दिया था—लेमार्कने। उसका कहना है, [illegible]णीमें अवयवोंका परिवर्तन उनके उपयोग और अनुपयोगपर निर्भर है। जो [illegible] मुहुर्मुहुः प्रयुक्त होते रहते हैं वे मांसल,पुष्ट, शक्तिवान तथा दीर्घ हो जाते और जिनका प्रयोग नहीं होता वे क्षीण, ह्रस्व, शक्ति-हीन और अल्प होते [illegible] तक कि एक समय वह आता है कि अन्तिम पीढ़ीमें लुप्त हो [illegible]ोंका सतत प्रयोग होना न होना भौगोलिक परिस्थितियों तथा [illegible] जिनके मध्य प्राणी जीवन व्यतीत करता है निर्भर है। [illegible]रिवर्तनसे ही अङ्गोंमें परिवर्तन उपस्थित होता है।

जिराफका चित्र दिया गया है। लेमार्कका कहना है कि यह प्रारम्भमें इतनी लम्बी न थी जितनी कि आज है परिस्थितिवश इसे कई पीढ़ियोंतक वृक्षकी ऊंची शाखाओंकी पत्तियां खानी पड़ीं। गरदनके मांसल रग बढ़ती गई। वर्षों तक घन चलानेवाले लुहारका भुजदण्ड पुष्ट मांसल हो जाना स्वाभाविक ही है। जिराफकी गरदन भी अज्ञात रूपसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती गई और आज इतनी बड़ी हो गई। यह तो हुआ अवयवके प्रयोगका महत्त्व, दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण हैं कि जिन अङ्गोंसे काम नहीं लिया जाता वे विलीन अथवा शक्ति-रहित हो जाते हैं। जो जीव अन्धकारमें रहने लगते हैं उनकी आखें शनैः शनैः छोटी और शक्तिहीन होती जाती हैं। यहां तक एक समय आता है कि सर्वथा लुप्त हो जाती हैं।

इस सिद्धान्तका यह अनुमान है कि वैयक्तिक अन्तर अगली पीढ़ीमें भी उतर आता है, विवादग्रस्त है। सब जीवशास्त्रवेत्ता इससे सहमत नहीं हैं। घन चलानेवाले लुहारके भुजदण्ड पुष्ट हो सकते हैं पर उसके लड़केके भुजदण्ड भी उसी प्रकार पुष्ट होंगे, सदिग्ध है। कई पीढ़ीतक चूहोंकी पूछ काटकर सन्तानोत्पत्ति कराई गई किन्तु अभाग्यवश अन्ततक पुच्छ रहित चूहे उत्पन्न न हुए। तात्पर्य यह कि लेमार्कका :सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है।

एक मत और है जो आज सर्वमान्य है। इसे Natural selection अर्थात् 'प्राकृतिक चुनाव' कहते हैं। इसके विधाता थे चार्ल्स डार्विन।

यूरोपमें, अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमें राजनैतिक सिद्धान्तोंकी बड़ी घूम थी। फ्रांसकी राज्यक्रांति (फ्रेंच रिवोल्यूशन) तथा अमेरिकन स्वतन्त्रताकी घोषणाने मनुष्योंके हृदयमें 'मानव-अधिकार' 'नैसर्गिक-न्याय' इत्यादिके नारे लगाने प्रारम्भ कर दिये थे। कई दार्शनिकोंने विज्ञप्ति निकालना प्रारम्भ कर दिया था कि सब मानवोंके लिये पूर्ण स्वतन्त्रता और समानताका दिन शीघ्र

उत्पत्तिके समय ठीक ऐसे ही न थे। उस समय उत्पन्न होनेवाले जीव-जन्तु अत्यन्त सादा और सूक्ष्म थे। तदनन्तर, ज्यों ज्यों समय वीतता गया उनमें शनैः शनैः कुछ-कुछ भिन्नता आती गई। कालान्तरमें इनसे कुछ निराले और ऊँचे दर्जेके प्राणियोंका आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधनका विशाल चक्र मन्दगतिसे आजतक घूमता आया। इस भ्रमणशील पहिया-के पदार्थोंका अध्ययन करना ही हमारा वास्तविक ध्येय है।

विकासवादकी उत्पत्ति पढ़नेपर शङ्का उत्पन्न होती है कि यदि वर्तमान समयमें दीख पड़नेवाले पशु व वृक्षोंका प्रादुर्भाव कुछ इने गिने सरल सूक्ष्म पशु, वृक्षोंसे हुआ,तो इनकी बनावटमें भिन्नता और परिवर्तन किस कारण हुई। सब जीव एक ही आकृति,आकार, वर्णके क्यों न हुए? एक ऊंटकी भांति लम्बी बेतुकी गरदनवाला और दूसरा हाथीकी भांति बेतुकी लम्बी नाकवाला क्यों हुआ! एक हिरनकी भांति लम्बे सींगवाला दूसरा ऋक्षकी भांति बिना सींगवाला क्यों हुआ? आदि। विभिन्न दीख पड़नेवाले जन्तुओंका मूल स्रोत एक होना

भर इतनेसे ही गणना लगाकर देखा जा सकता है कि यदि परिस्थितियाँ विपरीत न हों तो एक जोड़ेसे केवल साढ़े सात सौ वर्षोंमें एक करोड़ नब्बे लाख हाथी हो जायगे। जब हाथींका यह हाल है तब कुत्ते सरीखे प्राणियोंका क्या हाल होगा। उनसे तो सौ वर्षमें ही पृथ्वी भर जायगी किन्तु। आज हमें इतने नहीं दीखते अतः स्पष्ट है कि जितने उत्पन्न होते हैं, सबके सब अन्त तक जीवित नहीं रहते। बहुतेरे बीचमें ही समाप्त हो जाते हैं। बच रहनेवालों में से सबके सन्तानोत्पत्ति नहीं होती।

यहां तक केवल पशु-पक्षियोंके उदाहरण ही लिये हैं, एक उदाहरण वनस्पति जगतसे ले लेना भी ठीक होगा। प्रोफेसर हक्सलेका कहना है कि एक दरख्तमें केवल पचास बीज होते मानें और हर एकके लिये केवल एक वर्गफुट जगह रखें तो केवल नौ ही वर्षोंमें इतने हो जायेंगे कि पृथ्वी पर वही वही दिखाई देंगे। एक इंच जगह भी शेष न बचेगी। इन उदाहरणोंसे पता लगता है कि जीवनके लिये युद्ध चल रहा है। इस युद्धमें शेष वही बचते हैं जो अपने साथियोंसे कुछ अधिक विशेषता लिये हुए होते हैं।

यही विकासवादकी दूसरी सीढ़ी है।

इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। इसे तो हम नित्यके जीवनमें देखा करते हैं। जिनमें सामयिक परिस्थितिका सामना करनेकी शक्ति होती है वही बच रहते हैं और उन्हींकी सन्तानें पैदा होती हैं। सुस्त प्राणी बाज़ी नहीं मार पाते। इङ्गलैण्डमें पहले काले रंगके चूहे थे, किन्तु नावेंसे श्वेत रंगके चूहे जहाज़ोंमें भर कर वहां पहुँचाये गये तो कुछ समय पश्चात् श्याम मूषक लुप्त होगये। इसके पहले कीगुरोंकी बड़ी संख्या थी पर एशियासे गये हुए बारीक कीगुरोंने उनका नाश शेष कर दिया। कारण यह था कि उधरकी प्राणियोंकी जलवायु परिवर्तन अधिक धैर्यकर हुआ, प्राचीन निवासियोंका कम; अतः जब इनकी

प्राकृतिक-चुनावमें केवल चार बातें हैं जो स्मरण रखने योग्य हैं। (१) सृष्टिके कोने कोनेमें—प्राणियोंमें व वनस्पतियोंमें अहर्निश जीवन-संघर्ष चल रहा है। (२) इस युद्धमें—इस कशमकशमें जो प्राणी शेष बच रहते हैं उनमें मरे हुओंकी अपेक्षा अधिक विशेषता होती है। (३) शेष बचनेवाले सदस्य जिन गुणोंके कारण शेष रहे हैं वे गुण थोड़े बहुत परिमाणमें उनकी भावी सन्ततियोंमें भी उतर आते हैं। (४) आनुवंशिकत्वकी प्रबलता से यद्यपि बालक अपने मां-बापके प्रतिरूप ही होते हैं फिर भी कई सूक्ष्म बातोंमें विभिन्नता होती है।

बस इन चार बातोंमें ही विकासवाद, डार्विनवाद, प्रकृतिवाद आदि कोई वाद कहें, *सम्पूर्ण तर्क-वितर्क निहित है यदि इनको स्पष्ट व स्वतन्त्र विधि* क्रमशः समझ लिया जाय तो मेरी समझमें अनुपयुक्त न होगा।

पहली बात जीवनके निमित्त संघर्षशाली हैं। साधारण दृष्टिसे देखनेपर हमें सृष्टिमें चारों ओर शान्ति प्रतीत होती है—सरिताओंका कलकल नाद—विहंगावलियोंका मधुर संगीत प्रातःकालीन बसन्त उषाकी लालिमा, उपवनोंमें हरिणशिशुओंका स्वच्छन्द विहरण देखकर हम भले ही अनुमान लगा लें कि चारों ओर शान्ति,सुख और सुन्दरताका बोलबाला है। परन्तु वास्तविक रहस्य इसके विपरीत है। प्रत्येक प्राणीको दो मोटे मोटे प्रश्नोंका प्रति क्षण सामना करना पड़ता है—भोजन और शत्रु। कोई भी जन्तु शत्रुहीन नहीं। गन्दगी जैसी साधारण वस्तुसे पेट भरनेवाले भुनगेको मेढ़कका डर है, मेढ़कको खा जानेके लिये सर्प मुंह खोले बैठा है, सर्पको जीवित निगल जानेके लिये गरुड़ या मयूर दबे पांव आगे बढ़ रहा है, मयूरपर सहसा उछलकर आ धमकनेके लिये खूंखार भेड़िया भाड़ीमें छिपा रक्त लोलुप जिह्वासे ओठ चाट रहा है आदि आदि अटूट शृङ्खला आगे बढ़ती ही रहती है।

यदि प्रकृतिमें शत्रु व्यवस्था न होती तो आज तक इतने प्राणी, इतने पेड़-पौधे हुए होते कि बेशुमार। छोटे छोटे तीन चार उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। प्रोफेसर मैकब्राइड हमें बतलाते हैं कि साधारण घरेलू चिड़िया वर्ष भर की होते ही अण्डा देने वाली होती है। पूर्णायु औसतन् १० वर्ष है। प्रतिवर्ष इन चिड़ियोंका एक दम्पति लगभग चार बच्चे पालता है। एक जोड़े को लेकर देखें तो पता लगेगा कि यदि सब जीवित रहें व सन्तति उत्पन्न करते रहें तो दसवें वर्ष (प्रथम दम्पत्तिके जीवनान्त) तक उनकी संख्या १९५००,००० (एक करोड़ पञ्चानवे लाख) हो जायगी। अगले दस वर्षों में प्रायः २००,०००,०००,०००,००० (बीस नील) और तीस वर्षके अन्त तक १,२००,०००,०००,०००,०००,०००,००० हो जायगी। यदि एक दूसरेसे सटकर खड़ी कर दी जांय तो समस्त धरातलमें उपर्युक्त सेनाकी एक सौ पचास हज़ारवीं सेनासे भी अधिकके लिये स्थान न मिलेगा। यह केवल तीस वर्षमें हुआ था, आज तक न जाने कै लाख वर्षोंसे इनकी सन्तति-वृद्धि होती चली आई है, पर कहीं भी उपर्युक्त सेना नहीं दीखती,कारण कि भोजन न मिलने, ऋतुकी तीव्रता, शीत-प्रकोप, हिमपात, भीषण ग्रीष्मकी प्रचण्ड लपटें, बाज़ इत्यादि शक्तिशाली शत्रु आदि २ न जाने कितनी प्राकृतिक चक्कियों के बीच से होकर निकलनेके कारण असंख्य सदस्य चल बसे। उन परिस्थितियोंका सामना करते करते कुछ ही शेष रह गये।

ऊपरके एक उदाहरण द्वाराही हमने विश्व व्याप्त नियमकी सत्यता प्रमाणित करनी चाही है। उदाहरण सहस्रों लिये जा सकते हैं, पर व्यर्थमें समय नष्ट करना होगा। उसी एक सत्यकी पुष्टिके लिये दो एक उदाहरण और देखकर हम आगे बढ़ेंगे। वंश-वृद्धि सबसे कम अगर किसीकी होती है तो हाथियों की। हथिनीकी सौ वर्षकी आयुमें केवल तीन सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

पर इतनेसे ही गणना लगाकर देखा जा सकता है कि यदि परिस्थितियाँ विपरीत न हों तो एक जोड़ेसे केवल साढ़े सात सौ वर्षोंमें एक करोड़ नब्बे लाख हाथी हो जांयगे। जब हाथीका यह हाल है तब कुत्ते सरीखे प्राणियोंका क्या हाल होगा! उनसे तो सौ वर्षमें ही पृथ्वी भर जायगी किन्तु। आज हमें इतने नहीं दीखते अतः स्पष्ट है कि जितने उत्पन्न होते हैं, सबके सब अन्त तक जीवित नहीं रहते। बहुतेरे बीचमें ही समाप्त हो जाते हैं। बच रहनेवालों में से सबके सन्तानोत्पत्ति नहीं होती।

यहां तक केवल पशु-पक्षियोंके उदाहरण ही लिये हैं, एक उदाहरण वनस्पति जगतसे ले लेना भी ठीक होगा। प्रोफेसर हक्सलेका कहना है कि एक दरख्तमें केवल पचास बीज होते मानें और हर एकके लिये केवल एक वर्गफुट जगह रखें तो केवल नौ ही वर्षोंमें इतने हो जायेंगे कि पृथ्वी पर वही वही दिखाई देंगे। एक इंच जगह भी शेष न बचेगी। इन उदाहरणोंसे पता लगता है कि जीवनके लिये युद्ध चल रहा है। इस युद्धमें शेष वही बचते हैं जो अपने साथियोंसे कुछ अधिक विशेषता लिये हुए होते हैं।

यही विकासवादकी दूसरी सीढ़ी है।

इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। इसे तो हम नित्यके जीवनमें देखा करते हैं। जिनमें सामयिक परिस्थितिका सामना करनेकी शक्ति होती है वही बच रहते हैं और उन्हींकी सन्तानें पैदा होती हैं। सुस्त प्राणी बाज़ी नहीं मार पाते। इङ्गलैण्डमें पहले काले रंगके चूहे थे, किन्तु नार्वेसे श्वेत रंगके चूहे जहाज़में भर कर वहां पहुँचाये गये तो कुछ समय पश्चात् श्याम मूषक लुप्त होगये। रूसमें पहले भौंगुरोंकी बड़ी संख्या थी पर एशियासे गये हुए बारीक भौंगरोंने उनका नाश शेष कर दिया। कारण यह था कि प्रवासी प्राणियोंको जलवायु परिवर्तन अधिक श्रेयस्कर हुआ, प्राचीन निवासियोंको कम ; अतः जब कभी उन देशोंमें

सहसा ऋतुपरिवर्तन उपस्थित हुआ, विदेशी चूहे और झींगुर तो सहन कर गये, किन्तु देशी चूहे और झींगुर न कर सकनेके कारण चल बसे। वनस्पति जगत्‌की ओर देखें तो खाद्य अन्नोंके साथ निरुपयोगी पौधे उग आते हैं। कृषकगण उन्हें समूल उखाड़ फेंकते हैं कारण कि इनके होते खाद्य अन्नोंका पर्याप्त भोजन पा जाना कष्टसाध्य है। तात्पर्य यह कि जो जो व्यक्ति अथवा वंश जीवित रहनेके अयोग्य होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं और उनका स्थान योग्य व्यक्ति ले लेते हैं।

विकासवादकी तीसरी धारा है आनुवंशिकत्वकी। जिन विशेष गुणोंकी बदौलत कोई प्राणी या जाति जीवन-संघर्षमें जीवित बच रही है वे गुण कुछ न कुछ मात्रामें उनकी सन्तानोंमें भी पाये जाते हैं। यह तो स्पष्ट है और निर्विवाद भी कि चतुर माँ-बापके लड़के चाहे कितने ही चतुर न हों, बुद्धू माँ-बापके लड़कोंसे तो अधिक ही बुद्धिमान होंगे। स्वाभिमानी आत्मगौरवी माँ-बापके पुत्रोंके रक्तमें भी स्वाभिमानकी धारा प्रवाहित रहती है जब कि कायरका पुत्र जीते हुए भी आत्महीन सा रहता है।

किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि पिता-माताके सम्पूर्ण गुण व विशेषताएँ पुत्रोंमें उतर आती हैं सो बात नहीं। यदि ऐसा होता तो एक माँ-बापसेजितने पुत्र होते वे सब एक ही प्रवृत्ति, स्वभाव, आकृति वाले होते। पूर्ण सादृश्य कभी नहीं होता। व्यक्तिगत अन्तर होता ही है। यही विकासवादकी चौथी सीढ़ी है। नित्य सहस्रों व्यक्ति देखा करते हैं किन्तु सबकी आकृतियाँ भिन्न होती युग्म भ्राताओं तकमें भिन्नता मिलती है—झुण्डकी भेड़ें हमें भले ही एक वाली दीखें, किन्तु भेड़पालको पहचान लेनेके लिये अन्तर होता और तो और दो पत्तियां एकसी न मिलेंगी। एक स्थान, एक जलवायुमें वाले किन्हीं दो फलोंका स्वाद, रूप, रंग, गंध एक सा न मिलेगा।

इन चारों धाराओं युक्त विकास-प्रणालीको एक साथ लेकर विचार करें तो पता चले कि वर्तमान सृष्टि सम्बन्धी सम्पूर्ण शङ्काओंका उत्तर मिल जायगा। पशु और वृक्षोंकी संख्या असीमित क्यों नहीं है? कारण यह कि प्रति क्षण जीवन-संघर्षकी चक्की चल रही है। इस चक्कीमें अंधे, विचारहीन, शक्ति-हीन तो पिस जाते हैं, परन्तु चालाक, चतुर, समयानुसार वर्तनेवाले भाग बचते हैं। दूसरी शङ्का उठती है, "प्रकृतिमें इतनी भिन्नता क्यों है?" इसका उत्तर देनेके लिये तीसरी व चौथी धाराको मिलाकर कहना होगा। दौरा पड़नेवाले प्राणियों व पशुओंने बहुतेरे गुण तो माँ-बापसे पाये हैं और बहुतेरे अपने ही जीवनकालमें पा लिये हैं।

अब केवल एक प्रश्न शेष रह जाता है कि व्यक्तिगत भिन्नतायें जो माँ-बापसे उधार नहीं ली गयीं, किन कारणों पर अवलम्बित हैं।

यहाँ जब नैसर्गिक चुनावकी चर्चा की जा रही है कृत्रिम चुनावकी चर्चा कर देना बुरा न होगा बल्कि उपर्युक्त प्रश्नके उत्तर पानेमें सहायता ही मिलेगी। विशेषज्ञोंने भिन्न भिन्न प्रकारके कबूतरोंकी जांच की है। किन्हींकी चोंच लम्बी है तो किन्हींकी छोटी, किन्हींकी पूँछ लम्बी है, किन्हीं की ठिगनी आदि। यह सब कबूतर मनुष्यने अपने बुद्धि-कौशलसे उत्पन्न किये हैं। किस प्रकार? सौ दो सौ जंगली कबूतरोंको पकड़ लिया, यदि लम्बी चोंच वाले कबूतर उत्पन्न करना है तो उनमेंसे वे कबूतर छांट लिये जो सबसे अधिक लम्बी चोंच वाले हैं—उनके जो बच्चे हुए उनमेंसे फिर लम्बी लम्बी चोंच वाले छांट लिये। इसी प्रकार पन्द्रह बीस पीढ़ी तक करते जानेके पश्चात् वाञ्छित कबूतर मिल गये। रंग-बिरंगे कबूतर पाने हुए तो श्वेत और श्याम नर-मादाका साथ कराया। उनसे जो उत्पन्न हुए, कुछ का श्वेतसे कुछ का श्यामसे; इसी प्रकार बढ़ते गये। कुत्तेकी विभिन्न जातियां जैसे बुल-

डाग, ग्रेहाउण्ड, टेरियर, स्पैनियल उत्पन्न करानेके लिये भी मनुष्य वही विधि काममें लाता है। घुड़दौड़के चपल तेज़ घोड़े छांटनेके लिये भी उपर्युक्त कृत्रिम चुनाव प्रयुक्त करता है। अच्छी खेती पैदा करनेके लिये किसान रोग-रहित बड़ा दाना छांट रखता है। जो भी फल हमें आज इतने स्वादिष्ट प्रतीत होते हैं वे आदिकालमें जब जंगली दशामें थे तब स्वादिष्ट न थे; किन्तु मनुष्यके कृत्रिम चुनावने वर्तमान स्वाद दिला दिया। दक्ष माली अपनी वाटिका में पुष्प-वृक्षोंमें क़लम लगाकर भांति-भांतिके फूल उत्पन्न करता है।

जब मनुष्य अपनी जीवनीमें ही एक दूसरेसे भिन्न दीखनेवाले प्राणी पैदा कर सकता है, तब यही बात लाखों वर्षोंके अर्सेमें क्या प्राकृतिक चुनाव द्वारा सम्भव नहीं है!

प्राकृतिक शोधके द्वारा एक ही जातिके प्राणियोंसे बहुत समय पश्चात भिन्न भिन्न जातियां बन जाती हैं।

यह हुआ जाति सम्बन्धी अन्तरका संक्षिप्त विवेचन, अब शारीरिक वर्ण आकृति सम्बन्धी अन्तरकी मीमांसा की जाय।

शारीरिक वर्ण और आकृति पर भौगोलिक परिस्थितियोंका प्रभाव अधिक पड़ता है। अत्यन्त उष्ण कटिबन्धमें रहनेवाले मनुष्य बहुधा श्याम वर्णके तथा शीत कटिबन्धमें रहनेवाले गौर वर्णके होते हैं।

जिन प्राणियोंको रात्रिमें चलना, फिरना या भोजन पाना पड़ता है, उनका रंग प्रायः काला होता है, भड़कीला नहीं। इस प्रकारके प्राणी चूहे, उल्लू चिमगादड़ हैं। इसी भांति जिन प्राणियों, पतिंगों आदिको हरे और शीतल झुरमुटमें रहना पड़ता है, वे प्रायः हरे होते हैं और जिन्हें सूखी घास अथवा सूखे वृक्षकी पत्तियोंमें रहना पड़ता है उनका वर्ण भी आसपासके रंगके समान होता है। यहां तक देखा गया है कि अर्क मदारके पत्तों पर जीवित रह

वाला कीड़ा उसी गंध का होता है। जीवके रुधिर, रंग, गंध पर उसके जन्म-स्थानका गहरा प्रभाव पड़ता है, दोनोंको विलग नहीं किया जा सकता। प्रायः हरे कीड़ोंको देखकर लोग कहने लगते हैं कि भगवान्ने क्या ही सुन्दर कीड़ा बनाया है। उनका ध्यान कीड़ा व उसके जन्मस्थानके अटूट सम्बन्धकी ओर नहीं जाता। उन्हें कार्य व कारणका रिश्ता मिलाना नहीं आता। सीधी सी बात आती है। जो कुछ होरहा है सहसा अकस्मात् होरहा है, ईश्वरकी आज्ञासे हो रहा है। रोगोंके सम्बन्धमें भी आदिम व्यक्तियोंकी यह धारणा थी और आज भी धरातलकी आधीसे अधिक अशिक्षित जनता समझती है कि रोग दैवी शक्तियों द्वारा प्रेरित होते हैं—उन्हें तंत्र, मंत्र, जादू, टोना, झारने, फूकने, बलि इत्यादि द्वारा ठीक करनेका व्यर्थ प्रयास करता था। किन्तु जब जान गया कि रोगके कारण कुछ और ही हैं—भोजन व जलवायुकी अव्यवस्थायें हैं, तब उन मूर्खताओंसे पीछा छुड़ाकर प्रकृतिकी शरण आ गया। इसी प्रकार फलकी मिठास, पुष्पका सौंदर्य, उपवनकी शोभा, पक्षियोंकी विभिन्नता देखकर सीधा-सादा मानव समीपवर्ती परिस्थितियों पर दृष्टिपात न करके एक तीसरी सत्ताकी ओर संकेत करने लगता है। हमारा, पशुओंका, पक्षियोंका, वृक्षोंका जीवन निर्भर है वायु, सूर्यरश्मि, जल व खाद्य पदार्थों पर। उपर्युक्त वस्तुयें जिस जातिकी मिलेंगी, हमारा शरीर-निर्माण भी तदनुसार ही होगा। समस्त भूमण्डल पर पाई जाने वाली उपर्युक्त वस्तुयें एक ही प्रकृतिकी नहीं है, अतः इनसे निर्मित शरीर भी एक भांतिके नहीं। जीवनका सीधा सम्बन्ध प्राकृतिक परिस्थितियोंसे है। इसका पूर्ण विवरण पिछले अध्यायमें दिया जा चुका है।

आंख घुमाकर देखें तो चारों ओर असंख्य कीट, पतङ्ग, चतुष्पद, द्विपद जलचर, वृक्ष,लता,तृणादि दीख पड़ते हैं। इन सबको मोटी-मोटी दो शाखाओं में विभक्तकर सकते हैं—वनस्पति और पशु। दोनों परस्पर एक दूसरेसे

हुए हैं। वल्कि यह कहना ठीक न होगा—ठीक यह है कि दूसरी शाखा (पशु) पहलीपर अवलम्बित है। धरा-पृष्टपर-प्रथम वनस्पतिका प्रादुर्भाव हुआ। कई वर्षोंतक वायुमण्डलकी अशुद्धता मिटाते-मिटाते उसे जब श्वास ले सकने योग्य कर दिया। तब पशुओं (जलचरों) ने समुद्रसे निकलकर धराकी ओर रेंगना प्रारम्भ किया। रेतीले समुद्रतटपर लहरानेवाली हरी मरीचिका ही तो समुद्र-जन्तुओंको वाहर निकल आनेके लिये निमन्त्रित कर रही थी। वनस्पति पहलेसे उपस्थित न होती तो जलजन्तु क्या खाकर रहते? अतः वनस्पति प्रत्येक दशामें पशुसे प्रधान और आगे है। वनस्पतिका अटूट सम्बन्ध यदि किसीसे है तो भूमि और जलवायु है। प्रारम्भमें जव कड़ी चट्टानी भूमि थी—ऊंचे-ऊंचे ताड़ सदृश शाखा-पत्रहीन वृक्ष थे जैसे-जैसे चिकनी मिट्टी व धूल वढ़ती गई, वृक्ष छोटे सघन शाखा पल्लववाले होते गये—एक समय आया जव कि चिकनी मिट्टीमें दूर्वादिल, तृण, जड़ी, वूटी, पुष्प, वृक्ष, आदि उगने लगे।

जिस समय वनस्पति-शाखा वढ़ रही थी, ठीक उसीके साथ साथ समानान्तर रूपमें तदाश्रित पशुशाखा वढ़ रही थी। सव काम साथ साथ हो रहे थे। यह किस क्रमसे हुए, इसे विस्तार पूर्वक समझना आवश्यक है क्योंकि यह विकास-यात्रा ही मुख्य वस्तु है।

प्रकृतिवादियोंका अध्ययन वतलाता है कि वनस्पति और पशुसृष्टिके [illegible] हजार वर्षोंतक इस प्रकारकी सृष्टि थी कि न तो वनस्पति ही कहा जा था और न पशु ही। उसमें दोनोंके गुण विद्यमान थे। उभयपदी सृष्टिसे ही वनस्पति व पशु-लक्षणवाली दो शाखायें फूटीं।

८

जीव-रचनाका प्रारम्भ

यहां उस वाद-प्रतिवादको लिखनेकी आवश्यकता नहीं जो अभी तक वैज्ञानिकोंमें चलता आ रहा था। वादका विषय था जीवन प्रारम्भ सर्वप्रथम कहां हुआ? वायु में, जल में या पृथ्वी में? यहां इतना कह देना पर्याप्त होगा कि बहुमत जल (समुद्र) के पक्षमें रहा।

एक प्रश्न ऐसा था जिसपर समस्त वैज्ञानिक सहमत हैं। वह यह कि "जीवका प्रादुर्भाव निर्जीव अर्थात् जड़ पदार्थोंसे हुआ"। हम देख चुके हैं कि जीवन प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित द्रवपर निर्भर है जिसकी उत्पत्ति चार मुख्य पदार्थोंपर निर्भर है।

जब ही चार पदार्थ उचित मात्रामें मिल जायंगे जीव उत्पन्न हो जायगा। निर्जीव पदार्थों द्वारा जीवका विकास होना देखनेमें असम्भव मालूम पड़ता है पर कुछ वैज्ञानिक जोर देकर कहते हैं कि हम नित्य ही निर्जीव पदार्थोंके मिश्रणसे जीवोंका उदय देखा करते हैं किन्तु उनपर ध्यान नहीं देते

७
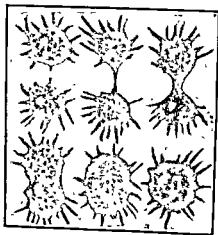
अमीबा

उपर्युक्त गिनाये गये जीव निर्जीव वस्तुओंके योगसे अवश्य उत्पन्न होते हैं किन्तु उनसे विकास बादमें सहायता नहीं मिलती क्योंकि जब ये स्वयं किसी मां के गर्भसे उत्पन्न नहीं होते तो वंशज भी नहीं छोड़ जाते। क्षणिक होते हैं। इनकी आगे शाखायें नहीं चल सकतीं। इस सृष्टिको जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है अमैथुनिक (जो मैथुनसे उत्पन्न न हो, स्वतः हो) कहते हैं। मैथुनिक सृष्टि बहुत आगे चलकर हुई। प्रारम्भमें तो अमैथुनिक सृष्टि ही थी।

जीवन समुद्रसे प्रारम्भ हुआ कहा ही जा चुका है। सामुद्रिक क्षार, जलमें घुसनेवाली सूर्य किरण, तथा कई प्रकारकी मट्टियोंके योगने समुद्रमें अमैथुनिक सृष्टि उत्पन्न कर दी। सबसे प्रथम उल्लेखनीय प्राणी अमीबा माना जाता है। यह महत्त्वपूर्ण जीव है। क्योंकि हम सब प्राणियोंका आरम्भ इसीसे हुआ है। ऊपर ऊपरसे इसके हाथ, पैर, मुह, आंख, कान, नाक, आदि कुछ दृष्टिगोचर नहीं होते। इसका शरीर केवल एक और वह भी अत्यन्त सूक्ष्म, कोशका बना होता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रकी सहायताके बिना इसका अध्ययन नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र लगाकर थोड़ी देर तक देखनेसे पता चल जाता है कि अन्य प्राणी जिस प्रकार खाते-पीते सन्तानोत्पत्ति करते हैं, उसी प्रकार यह भी सब व्यवहार करता है। इसके शरीरके चारों ओर जटायें सी फैली हैं वही इसके पैर हैं—इन्हें चाहे हाथ कह लें तो भी अन्तर न होगा। यह हाथ (अथवा पैर) सदैव हिलते रहते हैं, गति पूर्ण रहते हैं। फैलते व सिमटते रहते हैं। जैसे ही खाने योग्य कीटाणु स्पर्श हुआ कि इसे आलिंगनवत् चारु पाशमें जकड़ लिया, हजम किया। कीटोंके इस घुसनेके पश्चात फिर इनको निकालने स्थानमें विसर्जनका द्वार ही बनता। एक तो इसके मल द्वार होता ही नहीं और इसके इसकी योग्य

सामग्री रस युक्त होती है जिसका निस्सार पदार्थ होता ही नहीं। जैसे-जैसे भोजन करता जाता है आकार बढ़ता जाता है। जब बहुत बड़ा हो जाता है तब सन्तानोत्पत्ति करता है।

इसके जैसी सन्तानोत्पत्ति सृष्टिमें कदाचित ही किसीकी होती होगी। नर मादामें भेद नहीं फिर भी सन्तानोत्पत्ति। वह कैसे? वह इस प्रकार कि इसके शरीरको जैसे-जैसे पोषण मिलता जाता है वैसे ही वैसे इसका शरीर स्थूल होता जाता है। चित्रमें जहां काले विन्दुसे केन्द्र बनाया गया है, आगे चलकर वहांसे शरीर लम्बा होने लगता है और दो पृथक् भागोंमें बट जाता है भिन्न-भिन्न दो स्वतन्त्र **अमीबा** बन जाते हैं। अब उस प्रारम्भिक **अमीबा** का अस्त्वि न रहा उसके स्थानपर दो हो गये। दोमेंसे प्रत्येकके फिर दो दो भाग हुये। अब चार हो गये। इसी प्रकार दूने होते गये इस प्रणालीको सन्तानोत्पत्ति न कहकर आत्म-विभाजन कहा जाय तो अधिक ठीक होगा।

आगे चलकर घोंघेदार जीवोंकी सृष्टि आई। इन घोंघोंमें विशेषता यह होती है कि बिना व्यक्तिगत अस्तित्व नष्ट किये ही एक दूसरेसे जुड़ सकते हैं। इस जुड़े हुये झुण्डमें कई जातिवाले घोंघे सम्मिलित रहते हैं। यह घोंघे सदैव सटे ही नहीं रहा करते। अलग-अलग हो जाते और फिर मिल जाया करते हैं इनका अलग होना व मिलना, घड़ीके पेंडुलमकी भांति, तालल्यसे होता है। जब एक साथ चिपक जाते हैं तो संतरणशील उपनिवेश बन जाते हैं।

सम्भवतः उच्चवर्गीय वृक्ष इन्हीं औपनिवेशिक श्रृङ्खलाओंसे प्रादुर्भूत हुए। समुद्र जलकी सतहपर काई, सेवार आदि पहलेसे तैरा करती थी। इन उपनिवेशों पर लिपटकर स्थायी विश्राम घर व पर्याप्त भोजन सामग्री पा ली। घोंघे भी

इस काई, मावर, सेवार आदिसे इस प्रकार चिपक जाते हैं कि ढूँढनेकी आशंका तक नहीं हो पाती। इन्हींके सम्पर्कसे प्राणि-वृक्ष विकसित हुए जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

प्रारम्भिक जल वनस्पतिने शीघ्र ही अपने शरीरके अगोंमें श्रम विभाग प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भमें सामुद्रिक घासके तीन भाग हुए। एक पानीके भीतर रहनेवाला, दूसरा सबसे ऊपरी भाग जो खुले वायुमण्डलमें रहता और तीसरा भाग दोनोंके बीचवाला। पहले भागका काम था कि जलमग्न चट्टानसे लिपटा रहे ताकि पौधेको गिरनेसे बचावे। अभी इस भागका काम, मूलका काम करना (भोजन चूसना) न था अपितु लंगर डाले रहनेमें सहायता करना ही था। दूसरे भागका काम था वायुमण्डलसे नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड गैसादि, सूर्यताप, ईथर लहर ग्रहण करना व भोजन तयार करना। तीसरे भाग—मध्य भागका काम था प्रथम व द्वितीय भागमें सम्बन्ध स्थापित रखना अथवा ऊपर द्वारा तैयार किया भोजन नीचे तक पहुच जाने देना और पोली नलीका काम करना। पौधेके सम्पूर्ण अंग भोजन सामग्रीके निर्माणार्थ जुट जाते हैं। यातायातके साधन विकसित हो चलते हैं।

अभी, छाल, तना, लकड़ी, वल्कल, वास्तविक जड़ विकसित नहीं हो पाई, बीज, पत्ती, फूल, पराग फल तो बहुत दूरकी वस्तुएं हैं। स्मरण रहे कि वनस्पति जगत्‌में का यह प्रारम्भ बीजसे नहीं हुआ। बीज था ही नहीं बीजसे पेड़ कैसे उगते। सबसे प्रथम विकसित होनेवाला पौधा प्रोटोकोकस माना जाता है।

[illegible] कई जातियां विकसित हुईं जिनमें दो ही खास [illegible] और पोलिप्स (बहु-चरण)। इन दोनोंकी [illegible] यह सदा समुद्र तहमें ही वृन्त-सम्पृक्त बना

पड़ा रहा तथा कभी धमनी या नसके कामसे लाभान्वित न हो सका। सच पूछा जाय तो इसका कारण यह था कि स्पंज एक मुख वाला, जन्तु न था, अगणित मुखवाला सहस्त्रछिद्री था।

पोलिप (वहुपाद) अधिक उन्नतिशील थे। इनके अगणित मुख न होकर एक मुख था जो कि पाचनकेन्द्र-नलीसे सम्बन्धित था। मुंहका सम्बन्ध नली द्वारा भोजन पाचनालयसे था। इनके शरीरमें सरल धमनी जाल व नसों का प्रादुर्भाव भी हो चला था क्योंकि आमाशय था। नसें शरीरमें टेलीग्राफिक तारका काम देती हैं। इनके प्रादुर्भावका अर्थ होता है शरीरके एक अंगका दूसरे अंगसे सम्बन्धित हो जाना, अंगोंका पारस्परिक सहयोग वढ़ना। जव यह अंतः सहयोग वढ़ा तो मुखके पड़ोसका भाग स्थूल हो चला। इसकी सारी चेतना शिकार पकड़नेकी चिन्तामें व्यतीत होती थी। जिस अंगमें यह क्रियायें होती थीं वह मुखके समीप था। यह मस्तिष्ककी सूचना देने वाला अंग था। ध्यानकी एकाग्रता वढ़ते वढ़ते धमनी जालका केन्द्रीकरण वढ़ता गया, अंगस्थूल होता गया। कई पीढ़ियों तक यही क्रिया होती रही। कपाल तथा उसके भीतर मस्तिष्क वढ़ता गया।

देखनेमें सव पोलिप कपालहीन, सरहीन होते हैं, पर सिर होता अवश्य है। यदि वे चाहें तो थोड़ा रेंग सकते हैं,अपने संकरे स्थानसे थोड़ा सरक सकते हैं किन्तु वे स्वयं शिकार नहीं पकड़ सकते—आकाशी वृत्ति पर निर्भर रहते हैं। इनके भोजन पानेकी विधि यह है कि वे हाथों व पैरोंका जाल खोल देते हैं फिर उसे सिकोड़ लेते हैं, जो कुछ कभी अनायास इस पकड़में फंस जाता है वही भोजनका काम देता है।

आगे चलकर इनकी संतानोंमें दो परिवर्तन हुए। पहले परिवर्तनने इन सुस्त, गतिहीन, मन्दप्रिय जन्तुओंको समुद्रकी पेंदीसे उठाकर समुद्रमें दूरतक

तैरनेकी प्रवृत्ति प्रदानकी। उनकी मन्दप्रियता दूर करके स्फूर्तिका संचार किया। दूसरे परिवर्तनने शरीरको संतुलनशील बना दिया ताकि वह पानीमें बिना लुढ़के ठहर सके। अभी तक शरीर गोलाकार, नलीवत् था जो कि लहरोंके साथ ऊपर नीचे चक्कर लगाता रहता था पर अब शरीर गोलाकार बेलनसा न रहकर चार सतहवाला चपटा होगया—पीठ, पेट, दक्षिण व वामपार्श्व। अब शरीरका बैलेन्स पानी पर होने लगा।

यह जन्तु शरीरके एक भागसे रेंगते थे। उस भागका सिरा सदैव सामने रहता और दूसरा सिरा पूंछ बनकर पीछे। धीरे-धीरे इसी प्रकार सर और पूंछकी भांति अन्य अवयव भी स्पष्ट होने लगे। सबसे प्रथम सरका विकास हुआ। शनैः शनैः इसी सरमें विन्दुवत् नेत्रद्वय विकसित होने लगे।

नव विकसित सरवाले सब चपटे कीड़े nervous system या धमनी-प्रणालीसे युक्त हो चले थे। किन्तु रुधिर प्रणालीसे शून्य थे। इनके शरीर-व्यापी रसका रुधिर बनना प्रारम्भ न हुआ था। चपटे होनेका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उनके अन्तः शरीरका कोई भाग जल-व्याप्त जीवन-दायिनी आक्सीजनकी पहुंचसे दूर न था। रुधिरका काम चपटे होनेसे चल जाता था।

इसी चपटे होनेने रुधिरको निमन्त्रित किया। पूरे अंतरंगमें आक्सीजन पहुंचती ही थी धमनियोंमें प्रवाहित होनेवाला श्वेत रस लोहित वर्ण हो चला। रुधिरके साथ ही साथ रुधिर वाहक नालियाँ पुष्ट, प्रौढ़ हो चलीं। इसके फल-स्वरूप जन्तुका शरीर स्थूल व मोटा हो चला। यही कारण था कि यह जन्तु अपने पूर्वजोंसे अधिक [illegible] किया था

अब रुधिर [illegible] पहुंचाने लगा। प्रत्येक

[illegible] सा हो चला।

लम्बे, गोल, मोटे कीड़ोंमें एक और विचित्रता हुई, जो कि अभीतकके किसी कीड़ेमें न थी। अभी तकके कीड़ोंके शरीरमें मलद्वार न था, सारहीन भोजन (विष्टा) उसी द्वारसे निकालते थे, जिससे भोजन ग्रहण करते थे। इनकी पाचन क्रियावाली नलीमें केवल एक ही सिरे पर द्वार होता था, दूसरा सिरा द्वारहीन होता था—इनकी अंतड़ियां अव्यक्त थीं। किन्तु जैसे ही रुधिर प्रणाली प्रारम्भ हुई पाचन क्रिया व्यवस्थित हो चली। साधारण आंतों द्वारा भोजनका सारहीन भाग, मलद्वार खुलवानेके लिये धक्के मारने लगा। कई पीढ़ियोंके बाद वह समय आया कि मलद्वारके कपाट खुल गये। सारहीन पदार्थ विष्टा बनकर निकल जाता, सारयुक्त भाग रस बनकर शरीर पुष्टिमें लग जाता।

यह मलद्वार एक ही पीढ़ीमें नहीं खुल गया। इसके लिये न जाने कितने वंश तक प्रकृतिसे सत्याग्रह करना पड़ा होगा। यह मलद्वार प्रारम्भमें मुखद्वारके समीप ही था। शनैः शनैः जैसे जैसे पाचन क्रियाकी नलीकी लम्बाई बढ़ी मुखद्वार और मलद्वारका अन्तर बढ़ता गया। रुधिरवृद्धि व व्यायामके कारण शरीर अधिक पुष्ट व मांसल होता गया। ढांचा बढ़ता गया और मलद्वारके पास पूंछकी लम्बाई और बढ़ चली। इसने तैरनेकी गतिवृद्धिमें योग दिया। पूंछ हिलाकर तैरनेकी शक्ति बढ़ती गई। रुधिरके कारण मज्जा, अस्थि, पंसुली बन चली। इनके पश्चात् रीढ़का उदय हुआ। अबसे रीढ़दार जन्तुओं-का प्रादुर्भाव हो चला। हम लोग भी रीढ़दार जीव हैं। हमारा अस्थि पंजर इस युगके पशुओंकी ठठरीके समान ही है। यह रीढ़दार जन्तु तत्कालीन पशु जगतके शासक थे। अच्छे मस्तिष्क और ज्ञानेन्द्रियोंके विकास आदिने उन्हें बड़ा विशालकाय शरीर प्राप्त करनेमें सहायता दी। कई प्रकारकी मछलियां हो चली थीं जरूर पर रीढ़ [illegible]

सम्भवतः प्रारम्भिक रीढ़दार जन्तु स्वच्छ जलमें विहार किया करते थे। प्राणियोंके विकासमें पूंछका विशेष महत्त्व है। चाहे हमें अब पूंछका होना बुरा लगता हो और अब चाहे हम यह माननेको भी प्रस्तुत न हों कि कभी मनुष्य के पूंछ थी पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि पूंछकी ही बदौलत हम वर्तमान रूपमें आ सके हैं।

ब्रह्माण्डके इस विपुलायतन देशमें इस धरतीकी उत्पत्ति हमने देख ली। इस जड़-चेतन गुण-दोषमय धरतीके चराचरके सम्बन्धमें भी हमने संक्षेपमें आलोचना कर ली, अब इसके बाद जीव सृष्टिका नया अध्याय शुरू होता है। अब तक हमें बहुत कुछ अनुमान प्रमाणका ही सहारा लेना पड़ा है किन्तु इसके बादकी घटनाओंको प्रत्यक्षका बहुत अधिक सहारा मिला है। वह पृथ्वी-प्राचीन शिला राशियोंके रहस्यमय पृष्ठोंको पढ़कर लिखा गया है। इसका अध्ययन हम दूसरी पुस्तक "चैतन्यके विकास" में करेंगे।

अभिनव भारती ग्रन्थमालाका—५ वां ग्रन्थ

बौद्ध धर्म

[लेखक—श्री गुलाबराय, एम० ए०]

इस ग्रन्थमें संक्षिप्त रूपसे भगवान बुद्धकी जीवनी ; बौद्ध धर्मके मूल उपदेश बौद्ध धर्मके भीतर जितने बौद्ध सम्प्रदाय हैं, उनकी उत्पत्ति, उनका एक दूसरेसे भेद और उनके विस्तार आदिका परिचय संक्षेपमें दिया गया है।

बौद्ध भिक्षु होनेके नियम, भिक्षु संघके नियम और बौद्ध संघके अन्दरकी भीतरी बातें भिक्षु संघका विस्तार और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा भारतवर्षके बाहरकी साहसपूर्ण यात्रा करके वहांपर बौद्ध धर्मके प्रचारकी बातें दी गयी है।

बौद्ध धर्मके तीर्थ स्थानोंका संक्षेपमें परिचय दिया गया है।

बौद्ध धर्मके अन्दर प्रचलित लोकाचारोंका भी संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। इससे यह आसानीसे पता लग जाता है कि सामाजिक लोकाचारोंपर बौद्ध धर्मका कहां तक असर था।

बौद्ध कला नामक अध्यायमें बौद्ध धर्मकी सम्पूर्ण चित्रकला, मूर्ति कला और वस्तु कलापर प्रकाश डाला गया है। इस अध्यायमें मौर्य युगसे लेकर ६०० ई० तकके कलाके इतिहासपर प्रकाश पड़ता है। साथ ही इसके बादकी कलाका भी आभास मिल जाता है।

इस ग्रन्थमें लेखकने बौद्ध धर्मकी सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण बातोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। इस ग्रन्थसे हिन्दीके पाठकोंको एक ही स्थानपर बौद्ध धर्मकी महत्त्वपूर्ण बातोंका सक्षिप्त परिचय मिल जायगा। इस दिशामें यह एक ही ग्रन्थ है, जिसमें बौद्ध धर्मकी सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण बातोंका परिचय मौजूद है।

इस महत्वपूर्ण सचित्र और सजिल्द ग्रन्थका दाम लगभग १॥)